LIBRARY

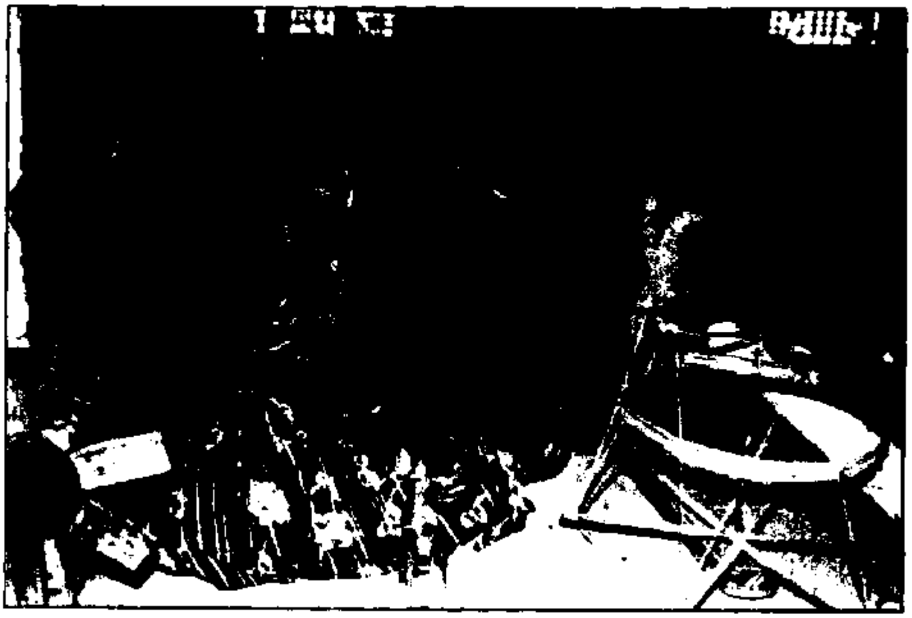

लघु-कुटीर उद्योगों में महिलाएं घर के कार्य के अतिरिक्त आर्थिक कार्य करती हैं फिर भी उन्हें केवल गृहिणी ही माना जाता है।

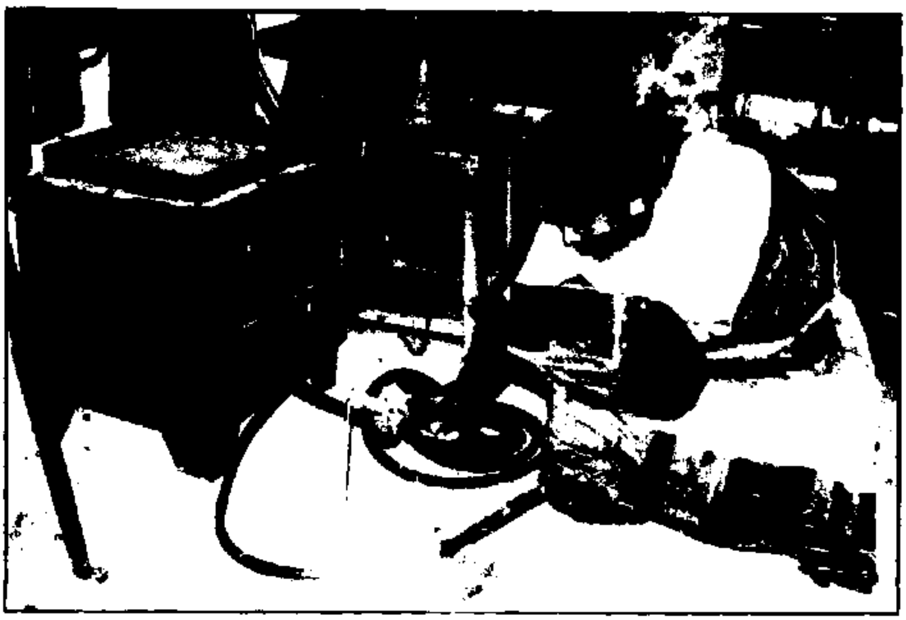

उल्लेखनीय हैं। इन समितियों से किसानों की आय में वृद्धि हुई है, कृषि साख तथा विपणन को मजबूती मिली है तथा ग्रामीण औद्योगीकरण का आधार बना है। जहां-जहां ऐसी समितियां स्थापित की गई हैं वहां कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ है। सहकारी प्रकरण समितियों ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी दूर करने में उपयोगी भूमिका निभाई है।

उपभोक्ता सहकारी समितियां

इन समितियों ने महंगाई से त्रस्त जनता को विशेष राहत दिलाई। ये समितियां अनावश्यक बिचौलियों को समाप्त कर उपभोक्ताओं को सस्ते दामों पर वस्तुयें उपलब्ध कराती हैं। इससे उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की वस्तुयें मिली हैं तथा उनकी क्रय-शक्ति बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे गरीब एवं मध्यमवर्गीय उपभोक्ताओं को इसका विशेष लाभ मिला है। सातवीं योजना के अन्त तक ग्रामीण क्षेत्रों में 3500 करोड़ रुपये की बिक्री इन समितियों के माध्यम से होने का अनुमान है। गांवों में प्राथमिक सहकारी समितियां इस कार्य में संलग्न हैं। राज्य स्तर पर राज्य सहकारी विपणन एवं उपभोक्ता संघ तथा राष्ट्रीय स्तर पर 'राष्ट्रीय उपभोक्ता संघ' इस कार्य में विशेष योगदान दे रहे हैं।

औद्योगिक सहकारी समितियां

ये समितियां निर्धन दस्तकारों, कारीगरों तथा छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयों को कई प्रकार की सुविधायें प्रदान करती हैं। बुनकर सहकारी समितियों के अतिरिक्त चमड़ा बनाने वालों, लुहारों, लकड़ी पर खुदाई करने वालों, बर्तन तथा खिलौने बनाने वालों, मधुमक्खी पालन उद्योग में लगे लोगों ने समितियां गठित की हैं। इन्हें उचित मूल्य पर कच्चा माल तथा उपकरण खरीदने, पूंजी प्राप्त करने तथा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। इससे ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिला है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं तथा उनकी स्थिति सुधरी है।

कमजोर वर्गों की सहकारी समितियां

कृषि एवं औद्योगिक सहकारी समितियों के अतिरिक्त सहायक क्षेत्र में भी अनेक सहकारी समितियां गठित हुई हैं। इनमें श्रम सहकारी समितियां, वन, डेयरी, यातायात, मत्स्य पालन आदि समितियां मुख्य हैं। इन समितियों से कमजोर वर्ग के लोगों को आगे बढ़ने का अवसर मिला है। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

इस प्रकार सहकारी आन्दोलन ने गांवों के विकास को नई दिशा दी है। कृषि, औद्योगिक एवं सहायक क्षेत्र की सहकारी समितियों ने देश के अधिकांश ग्रामीण परिवारों को लाभान्वित किया है। सहकारिता की मूल भावना का उद्गम पिछड़े एवं शोषित वर्ग के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए हुआ। इस आन्दोलन के माध्यम से सदियों से शोषित एवं पिछड़े वर्ग को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान किया गया है।

आज भारत के गांवों की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में सहकारिता का बहुत बड़ा योगदान है। ग्रामीणों के मुख्य व्यवसाय कृषि के विकास के लिए इन समितियों द्वारा पर्याप्त वित्त सुलभ कराके किसानों को साहूकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाई है। आधुनिक तरीके से खेती करने के लिए अच्छी खाद, बीज, कीटनाशक दवाइयां, कृषि यंत्र आदि सुलभ कराया जाता है। विपणन समितियां कृषि-उत्पादन का उचित मूल्य दिलाती हैं। कृषि के सहायक धन्धों के रूप में डेयरी, कुक्कुटपालन, मधुमक्खियां पालन आदि में भी विशेष सहयोग दिया है।

औद्योगिक सहकारी समितियों ने ग्रामीण क्षेत्रों के लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास में विशेष योगदान दिया है। इस प्रकार कृषि, कृषि के सहायक उद्योग एवं लघु एवं कुटीर उद्योगों में विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न हुये हैं, जिससे बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी की समस्या की विकरालता कम हुई है। गांव के गरीबों एवं मेहनतकश लोगों की आय बढ़ी है। उन्हें उचित मूल्य पर अच्छी किस्म की वस्तुयें उपलब्ध हुई हैं। इस प्रकार सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की गति तेज हुई है।

समस्यायें एवं सुझाव

सहकारी शिक्षा एवं प्रशिक्षण की कमी, अत्यधिक राजनैतिक हस्तक्षेप, स्वयं के वित्तीय साधनों की अपर्याप्तता, सदस्यों में चेतना का अभाव, विभिन्न समितियों में आपसी सहयोग एवं समन्वय की कमी, संस्थाओं की गतिविधियों में सदस्यों की सक्रिय भागीदारी न होना, कर्मचारियों में कम रुचि आदि कारणों से विभिन्न सहकारी समितियां ग्रामीणों को पर्याप्त लाभ नहीं दिला पाई हैं। इन समस्याओं पर गम्भीरता से विचार कर इन संस्थाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रभावी कदम उठाने होंगे।

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा का बोलबाला है। सहकारिता के सिद्धांतों, कार्यक्रमों व विभिन्न गतिविधियों के बारे में ग्रामीण सदस्य अनभिज्ञ हैं। इन्हें सहकारी आन्दोलन के लाभों से अवगत कराते हुए संस्थाओं की गतिविधियों का ज्ञान

कराने से वे सक्रिय रूप से विभिन्न गतिविधियों में भाग ले सकेंगे।

सहकारी संस्थाओं के विकास में सरकार ने विशेष योगदान दिया है। इन संस्थाओं को वित्तीय मामलों में स्वावलम्बी बनाना जरूरी है। इसके लिए सदस्यों को समझाना चाहिए ताकि वे संस्था की जमाओं में योगदान दें। बकाया ऋणों के कारण अनेक संस्थाओं की वित्तीय हालत बदतर है। अनेक सदस्य जानबूझ कर ऋणों का भुगतान नहीं करते। समय-समय पर सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों के कारण भी वसूली गड़बड़ा जाती है। सदस्यों को समय पर ऋण चुकाने के लाभों से अवगत कराना चाहिए। दोषी लोगों को दण्डित किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं के कार्यक्रम को राजनीति से दूर रखकर सहकारी सिद्धांतों के अनुरूप संचालित करना चाहिए।

सहकारी संस्थाओं के कर्मचारियों को उचित वेतन एवं सुविधायें दी जानी चाहिए ताकि वे संस्था की गतिविधियों में अधिक मेहनत से कार्य करें। कर्मचारियों, सदस्यों एवं पदाधिकारियों के प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था करनी चाहिये ताकि इनकी कार्यकुशलता बढ़ सके।

सहकारी संस्थाओं के विकास की जिम्मेदारी केवल सरकार की ही नहीं है, इनकी प्रगति में सदस्यों एवं देश के गरीब एवं पिछड़े लोगों का हित निहित है। सदस्यों की सक्रिय भागीदारी, कर्मचारियों के योगदान एवं सरकार के सहयोग से सहकारी आन्दोलन सही मायने में सफल हो सकता है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों का तेजी से विकास होगा। ग्रामीणों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधरने से गांव खुशहाल होंगे तथा विकास की दौड़ में आगे बढ़ सकेंगे।

64, कल्याण कालोनी, टोंक फाटक,
जयपुर-302015, राजस्थान

दृढ़ इच्छाशक्ति—परिणाम बेरोजगारी नहीं देखी

राकेश कुमार बाजपेयी

छिंदवाड़ा जिले के विकास खंड मुख्यालय तामिया में प्रवेश करते ही साइकिल स्टोर का बोर्ड दिखायी पड़ता है, जिसके मालिक हैं, 30 वर्षीय युवा श्री पूनाराम पुत्र श्री शंखलाल। वर्ष 1984 में समन्वित ग्रामीण विकास योजना के तहत श्री पूनाराम ने छिंदवाड़ा को-आपरेटिव सेन्ट्रल बैंक शाखा तामिया से 2000 रुपये की प्रथम किस्त साइकिल दुकान हेतु प्राप्त किया था, जिसका भुगतान कर दिया। कक्षा 11वीं पास उत्साही युवक श्री पूनाराम ने पुनः 1988 में 7500 रुपये की द्वितीय किस्त प्राप्त की। जिसमें पूनाराम को 2500 रुपये सहायता राशि तथा 5000 रुपये देय ऋण राशि सम्मिलित थी। श्री पूनाराम एक सौ रुपया मासिक किस्त नियमित रूप से बैंक में जमा कर रहे हैं। श्री पूनाराम के परिवार में उनके अतिरिक्त 3 अन्य भाई शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जिनकी वे सहायता करते हैं। सरकारी सहायता के पूर्व ही श्री पूनाराम ने साइकिल की दुकान प्रारंभ कर दी थी। लेकिन पूंजी के अभाव में वे कार्य को आगे बढ़ाने में असमर्थ थे। मात्र पंचर जोड़ना व छोटे-मोटे सुधार कर अपनी जीविका अर्जित करते थे। परिवार की स्थिति अत्यन्त सामान्य थी, उनको भी समय पर सहायता की आवश्यकता थी।। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात श्री पूनाराम को बेरोजगारी की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। उनका कहना है कि इस कार्य में बैंक ने विशेष सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान किया। श्री पूनाराम अपने कार्य से सन्तुष्ट है और आगे बढ़ाने की इच्छा शक्ति के साथ अपने कार्य में तल्लीन हैं। उन्हें बड़ी खुशी है कि वे परिवार का बोझ नहीं बने अन्यथा और भी अधिक समस्या परिवार के सामने आती। अब श्री पूनाराम पूरी तरह सन्तुष्ट हैं तथा अपनी दुकान को और आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर सचेत रहते हुए अपना काम करते हैं। श्री पूनाराम का कहना है कि बेरोजगारी की समस्या हमारे सामने नहीं आयी। श्री पूनाराम समय-समय पर अपने परिवार की आर्थिक सहायता करते रहते हैं। उनकी राय से हर नवयुवक को सरकारी नौकरी के अतिरिक्त सरकार की दूसरी सहायक योजनाओं के माध्यम से भी अपनी आत्मनिर्भरता के लिए प्रयास करना चाहिए। □

ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों का उद्गम तथा विकास

आलोक कुमार माथुर

आजादी के बाद देश के योजनाबद्ध विकास की आवश्यकता सरकार को महसूस हुई तथा इस दिशा में योजना आयोग का गठन किया गया जिसने 1950-51 से पंचवर्षीय योजनाएं बनाकर विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1960-61 में पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा से यह निष्कर्ष निकाला गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की गति शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा अत्यन्त धीमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत की अनुपलब्धि/कमी के कारण उन्नत वैज्ञानिक विधियों को कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों में नहीं अपनाए जाने के कारण अपेक्षित उत्पादकता प्राप्त नहीं हो सकी। 1960 में सिर्फ 3.8 प्रतिशत (21,754) गांवों में ही बिजली उपलब्ध थी अतः ग्रामीण विद्युतीकरण की आवश्यकता समझते हुए सरकार ने हर स्तर पर सभाएं, गोष्ठियां तथा अधिवेशन आयोजित किए।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में 153 करोड़ रुपये ग्रामीण विद्युतीकरण पर खर्च किए गए जो कि द्वितीय योजना से 104 प्रतिशत अधिक थे। इस योजनावधि में 23,398 ग्राम तथा 3,13,852 कुएं उर्जित किए गए, किन्तु उन्हें मिलाकर भी सिर्फ 45,148 (7.8 प्रतिशत) गांवों में बिजली उपलब्ध हो सकी। उस समय ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो ग्रामीण विद्युतीकरण की गति तीव्र करे तथा भविष्य में सुचारू रूप से वितरण का कार्य देख सके।

ग्रामीण विद्युत सहकारी समिति पर विचार

1965 में राज्य विद्युत मण्डल के सभापतियों की बैठक राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित की गई। इस बैठक में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि राज्यों में ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना की जाए जो राज्य विद्युत मण्डलों को ग्रामीण विद्युत वितरण में सहायता प्रदान करे तथा यदि यह प्रयोग सफल रहे तो भविष्य में और ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां स्थापित की जाएं। इनकी स्थापना के पक्ष में निम्न [illegible] दिए गए :

(1) देश के अधिकतर राज्य विद्युत मण्डल ग्रामीण विद्युत वितरण में विनियोग से कम आगम प्राप्त कर रहे हैं तथा इस तरह यह उनके लिए एक भार है।

(2) सहकारिता को आम जनता ने अपनाया हुआ है तथा इसके लाभों से भी वह भली-भांति परिचित हैं।

(3) निजी क्षेत्र का कोई भी व्यक्ति ग्रामीण विद्युतीकरण को अपने हाथ में नहीं लेगा क्योंकि उसके लिए अन्य अनेक व्यवसाय उपलब्ध हैं जिससे वह काफी मुनाफा प्राप्त कर सकता है।

(4) ग्राम विद्युतीकरण के लिए ग्रामीण जनता में जागरूकता लाने के लिए, उनके स्वयं के प्रबंध तथा नियंत्रण में भाग लेने के लिए निजी संस्था तथा राज्य विद्युत मण्डल कभी भी सहायक सिद्ध नहीं होंगे।

(5) अमेरिका में ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही थीं।

उपरोक्त सभी विचारों को मद्देनजर रखते हुए सरकार तथा नियोजन-कर्ताओं ने ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना का निर्णय लिया।

संपरीक्षीय ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां

केन्द्रीय सरकार ने अमेरिका की राष्ट्रीय ग्रामीण विद्युत सहकारी संस्था तथा सहकारी संघ को भारत के कुछ ऐसे क्षेत्र पता लगाने के लिए आमंत्रित किया जहां ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की अनुगामी इकाइयां स्थापित की जा सकें। उन्होंने निम्न 5 स्थान चुने—

सिरिसिल्ला जिला करीमनगर आंध्र प्रदेश, कोडिनार जिला अमरेली गुजरात, हुकरी जिला बेलगाम कर्नाटक, श्री रामपुर जिला अहमदनगर तथा राहुरी जिला अहमदनगर।

उपरोक्त 5 स्थानों में ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना जुलाई 1969 से अक्तूबर 1969 के बीच की गई तथा

अक्तूबर 1970 से मार्च 1971 के बीच की अवधि में इन्होंने कार्य प्रारंभ कर दिया। ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जुलाई 1969 में ग्रामीण विद्युतीकरण निगम की स्थापना की गई।

ग्रा. वि. स. स. के उद्देश्य

ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम दर पर विद्युत उपलब्ध कराना।

(2) आधुनिक कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों को लाभ पहुंचाकर ग्रामीण जनता का जीवन स्तर ऊंचा उठाना।

(3) ग्रामीण विद्युत सहकारी समिति के नियंत्रण तथा प्रबंध में स्थानीय जनता की सहभागिता प्राप्त करना।

(4) पम्प सेट, जेनरेटर इत्यादि मशीनों के वितरण, मरम्मत तथा सुधार के लिए एक स्थानीय संस्था उपलब्ध कराना।

(5) गांवों का गहन तथा तीव्र विद्युतीकरण करके उनका सुचारू रूप से संचालन करना।

संपरीक्षीय विद्युत सहकारी समितियों की समीक्षा

सरकार के आदेश पर फरवरी 1972 में ग्रामीण विद्युतीकरण निगम द्वारा ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों पर एक समिति गठीत की गई जिसके सभापति श्री एस. एम. पुरी थे जो उस समय सह-सचिव (कृषि तथा सिंचाई) योजना आयोग थे। समिति के अनुसार "ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां अच्छा कार्य कर रही हैं इन्हें आवश्यक फैलाव दिया जाना चाहिए"। लोक-उपक्रम समिति (1974-75) ने इनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि अन्य राज्यों में भी इनकी स्थापना की जानी चाहिए। 1978 में विद्युत पर राज्याध्यक्ष समिति गठित की गई जिसने ऐसी सहकारी समितियों को और अधिक प्रोत्साहन देने पर बल दिया।

इस तरह सरकार द्वारा गठित सभी समितियों द्वारा ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों के कार्यकलापों की प्रशंसा की गई तथा ऐसी और विद्युत सहकारी समितियां प्रारंभ करने पर बल दिया।

ग्रा. वि. स. स. के लाभ

ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना से ग्रामीण विद्युत वितरण में निम्न लाभ प्राप्त किए जा सके—

(1) चूंकि यह समिति ग्रामीण जनता के प्रबंध और नियंत्रण में थी इसलिए बिजली की चोरी इत्यादि पर अधिक नियंत्रण प्राप्त हो सका है।

(2) ग्रामीण विद्युत वितरण का कार्य सहकारी समिति के द्वारा होने से राज्य विद्युत मण्डल का कार्यभार ग्रामीण क्षेत्रों में सिर्फ संप्रेक्षण तक ही सीमित रह गया जिससे कि मण्डल की कार्य कुशलता बढ़ी तथा हानि में कमी आई।

(3) यह एक स्वायत्तशासी सरकार की तरह अपने कार्यों का प्रबंध करती है जिससे की इसकी कार्यदक्षता बढ़ी है।

(4) ग्रामीण विद्युतीकरण से संबंधित नक्शे यह स्वयं तैयार करके बचत प्राप्त करती है।

(5) यह जिस क्षेत्र में कार्य करती है उस क्षेत्र के सभी इच्छुक लोगों को विद्युत उपलब्ध कराई जाती है, परिणामस्वरूप विद्युत वितरण की प्रति इकाई लागत में काफी कमी करना संभव हो सका है।

अनुगामी ग्रा. वि. स. स.

संपरीक्षीय ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की सफलता तथा सरकार द्वारा गठित समितियों की सिफारिश पर देश में और नई ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां स्थापित की गईं। 1976 में 5 ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना हुई—अनाकापल्ली जिला विशाखापट्टनम आंध्र प्रदेश, रायाछोटी जिला कुदापहा आंध्र प्रदेश, फतह फुलवारी शरीफ जिला पटना बिहार, कोठपुतली जिला जयपुर राजस्थान तथा पन्धाना जिला पूर्व निमार मध्य प्रदेश। 1978-79 में दो और ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां स्थापित की गईं—अथाहगढ़ जिला कटक उड़ीसा तथा मनसा जिला मंदसौर मध्य प्रदेश। 1980 में 4 और ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां स्थापित की गईं—मनावार जिला धाड़ मध्य प्रदेश, साम्बा जिला जम्बू जम्मू कश्मीर, कुम्बकीनम जिला थनजावूर तमिलनाडू तथा सिंगूर हरिपाल जिला हुगली पश्चिम बंगाल।

ग्रा. वि. स. स. पर माथुर समिति

ग्रामीण विद्युतीकरण को और गहनता तथा तीव्रता प्रदान करने के लिए और क्या उपाय किए जाएं? इस प्रश्न को लेकर ग्रामीण विद्युतीकरण निगम द्वारा 4 मई 1981 को एक समिति गठित की गई, जिसके सभापति श्री एन. एस. माथुर थे जो कि जी. बी. पन्त विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके थे तथा उत्तर प्रदेश में कमिश्नर थे।

इस समिति के अनुसार यदि किसी राज्य में अधिक ग्रामी[ण] विद्युत सहकारी समितियां हों तो वहां राज्य स्तर पर

बिजली से चमचमाता गांव

समन्वयन समिति बनाई जानी चाहिए जिससे राज्य भर की विद्युत सहकारी समितियों की गतिविधियों पर नियंत्रण सुचारू रूप से हो सके। ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर एक संस्था बनाने की जरूरत है जो कि विभिन्न राज्यों की ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की गतिविधियों का समन्वयन कर सकें। राष्ट्रीय स्तर पर गठित संस्था के सदस्य होने चाहिए—सभी ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम तथा राज्यों के विद्युत मण्डल। इस तरह राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों का नियंत्रण, निर्देशन, समन्वयन तथा क्रियान्वयन हो सकेगा।

ग्रा. वि. स. स. की वर्तमान स्थिति

1981-82 से 1987-88 तक 20 और ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना की जा चुकी है। इस समय भारत में कुल 48 ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियां 12 राज्यों में कार्यरत हैं। राज्यवार ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की वर्तमान स्थिति निम्न प्रकार है—

मध्य प्रदेश में 17, आंध्र प्रदेश में 14, कर्नाटक में 3, उड़ीसा में 2, राजस्थान में 3, तमिलनाडु में 3, उत्तर प्रदेश में 1, जम्मू-कश्मीर में 1, गुजरात में 1, पश्चिम बंगाल में 1, बिहार में 1 तथा महाराष्ट्र में 1।

सुझाव

ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों को विद्युत की प्रति इकाई लागत में कमी लानी चाहिए। इनके द्वारा सहकारी शिक्षा का प्रसार स्थानीय निवासियों में किया जाना चाहिए ताकि सहकारिता के महत्व से सभी अवगत हो सकें तथा उसे वृहद स्तर पर मान्यता मिले। सरकार के सामने 1994-95 तक 100 प्रतिशत गांवों के विद्युतीकरण का लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। नए स्थानों पर ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों की स्थापना से एक तरफ तो ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत प्रसार तेजी से हो सकेगा तथा दूसरी तरफ राज्य विद्युत मण्डलों के कार्यभार में कमी आने से कार्यकुशलता बढ़ेगी।

बंगला नं. 33, जवाहर नगर
ग्लास फैक्ट्री के पास, टोंक रोड,
जयपुर, राजस्थान-302015

ग्रामीण एवं कृषि विकास में सहकारी बैंकों की भूमिका

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

भारतीय आर्थिक विकास की समस्या कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा गांवों की चहुंमुखी विकास की समस्या है। यहां लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, जिसका मुख्य पेशा कृषि है। साथ ही यह आधे से अधिक उद्योग-धंधों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करती है। निस्सन्देह, कृषि के विकसित होने पर ही आर्थिक एवं ग्रामीण विकास की गति में तेजी आ सकती है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि उन्नत बीजों, रासायनिक खाद, सिंचाई की सुविधाओं, आधुनिक उपकरणों के साथ-साथ विपणन एवं संग्रह की समुचित सुविधाओं द्वारा ही किया जा सकता है। इसके लिए किसानों के पास पर्याप्त पूंजी की कमी है, क्योंकि इनके कृषि जोत अत्यन्त छोटे आकार के हैं और उनकी आर्थिक स्थिति काफी कमजोर है। यह आंका गया है कि देश के कुल कृषि जोत का 74.5 प्रतिशत भाग लघु एवं सीमान्त किसानों के हाथ में है। यह कृषि वर्ग अपनी कृषि सम्बन्धी एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामीण महाजनों, व्यापारियों एवं बड़े किसानों के चंगुल में होते हैं तथा ऊंची ब्याज दर एवं अन्य प्रकार के शोषण के शिकार होते हैं। इस प्रकार इनकी विनियोजन क्षमता काफी भिन्न होती है।

देश में तीव्र कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए किसानों को सस्ते दर पर पर्याप्त मात्रा में साख उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सहकारी बैंक एवं साख समितियों की स्थापना की गयी। ये सहकारी बैंक सदस्य किसानों को कृषि कार्य के लिए खाद, बीज, हल एवं कृषि औजार आदि खरीदने के लिए अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख तथा भूमि खरीदने, कृषि भूमि में स्थायी सुधार एवं कृषि यंत्र जैसे पावर-टिलर, ट्रैक्टर खरीदने हेतु दीर्घकालीन साख प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त ये बैंक गैर-कृषि कार्यों जैसे कुटीर उद्योग की स्थापना एवं पशुपालन हेतु भी साख की आपूर्ति करते हैं। कभी-कभी ये बैंक स्वयं खाद, बीज एवं कृषि औजारों की आपूर्ति एवं वितरण भी करते हैं। सहकारी बैंकों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण किसानों को देशी बैंकर के चंगुल से मुक्त करना, निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ना तथा कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना है। ये किसानों के कृषि उपज के विपणन एवं संग्रहण सम्बन्धी योजना को कार्यान्वित करने तथा इनके बीच बचत एवं मितव्ययता की भावना का विकास करने में भी सहयोग करते हैं।

सहकारी बैंक का विकास एवं स्वरूप

भारत में सहकारी बैंक का विकास 'सहकारी समिति अधिनियम' के अन्तर्गत 1904 में प्राथमिक कृषि साख समितियों की स्थापना से हुआ। इस अधिनियम में सर्वोच्च सहकारी बैंकों की स्थापना की कोई चर्चा नहीं थी। देश में कृषि के विकास में बढ़ती हुई वित्तीय आवश्यकता को देखते हुए 1912 में सहकारी समिति अधिनियम में संशोधन कर केन्द्रीय एवं शिखर सहकारी बैंकों की स्थापना एवं रजिस्ट्री के लिए अनुमति दी गयी। इस अधिनियम के साथ देश में तीव्र गति से सहकारी बैंक का विकास आरम्भ हुआ। प्रथम योजनाकाल से ही सहकारी बैंकिंग व्यवस्था के विकास पर विशेष जोर दिया गया तथा इसे नियोजित आर्थिक एवं कृषि विकास का एक अनिवार्य उपकरण बनाने का प्रयास किया गया।

सहकारी बैंक व्यवस्था का स्वरूप एक पिरामिड के समान है जो संघीय व्यवस्था पर आधारित है। आधार स्तर यानि ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि साख समिति अकेली ईंट है, जिस पर सम्पूर्ण सहकारी बैंक व्यवस्था संगठित की गयी है। प्राथमिक साख समितियों को मिलाकर जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना की गयी है। यह आधार स्तरीय एवं शिखर सहकारी बैंक के बीच कड़ी के रूप में कार्य करती है। पिरामिड के ऊपरी स्तर पर राज्य सहकारी बैंक की स्थापना की गयी है। यह राज्य स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंकों के कार्यों पर नियंत्रण एवं समन्वय स्थापित कर राज्य में सहकारी साख व्यवस्था को सन्तुलित रखती है। सहकारी बैंक के उक्त तीन स्तरीय ढांचे कृषि विकास के लिए अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख की आपूर्ति करती हैं। दीर्घकालीन सहकारी साख व्यवस्था का स्वरूप द्वि-स्तरीय है—आधार स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास या बन्धक बैंक तथा शीर्ष पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक स्थापित किये गये हैं।

प्राथमिक कृषि साख समितियां

प्राथमिक कृषि साख समितियों का मूल उद्देश्य किसानों को कृषि एवं घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अल्प एवं मध्यमकालीन साख प्रदान करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, देश में इन समितियों की संख्या में तीव्र गति से कमी आई जबकि उसकी परिधि में आये गांवों की संख्या, इसकी स

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष—35, अंक 8, ज्येष्ठ-आषाढ़, शक-1912

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल सूमरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

उत्पादन अधिकारी : राम स्वरूप मुंजाल
आवरण पृष्ठों की
साज सज्जा : अलका
चित्र : फोटोग्राफर—रमेश कुमार
ग्रामीण विकास विभाग से साभार

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय सूची

ग्रामीण विकास में सहकारिता का योगदान — 2
जे. पी. यादव, महेश चन्द्र चौधरी

ग्रामीण विद्युत सहकारी समितियों का उद्गम तथा विकास — 5
आलोक कुमार माथुर

ग्रामीण एवं कृषि विकास में सहकारी बैंकों की भूमिका — 8
सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

उत्तर प्रदेश में सहकारी प्रक्रिया इकाइयां—वर्तमान स्थिति — 11
सुनील कुमार सिंह

ग्राम-विकास में सहकारिता की भूमिका — 16
राधेश्याम भारद्वाज

डा. आम्बेडकर और ग्राम-विकास — 19
डा. प्रभाकर मावचे

ग्रामीण औद्योगीकरण—आवश्यकता एवं प्रासंगिकता — 22
डा. निर्मल गांगुली

जल संसाधन प्रबन्ध—चुनौतियां — 25
डा. अशोक कुमार शर्मा

पेयजल ग्रामीण सुधार की बुनियादी आवश्यकता — 28
डा. राजेश्वरी त्रिपाठी

ग्रामीण साख—कुछ विचारणीय मुद्दे — 30
डा. सी. एम. चौधरी

वर्षा — 32
संतोष खन्ना

कृषि विपणन में मण्डियों की भूमिका — 33
डा. एम. एल. सोनी, डा. पी. के. शर्मा

नये आयाम — 36
सतपाल

शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना (सीयू योजना) एक अध्ययन — 37
बसंत मेहता, संजय जैन

ग्रामीण विकास की सम्भावनायें एवं स्वरूप — 40
रमेश बहुगुणा (सुरेश)

पर्यावरण — 42
महेन्द्र नाथ शुक्ल

भारतीय महिलाएं—रोजगार के आइने में — 43
त्रिलोकी नाथ

बेरोजगारी—एक ज्वलन्त समस्या : कारण और निदान — 46
गोपाल लाल

शहद — 48
विक्रम राजन शर्मा

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

ग्रामीण विकास में सहकारिता का योगदान

जे. पी. यादव
महेश चन्द्र चौधरी

भारत गांवों का देश है। देश की लगभग तीन-चौथाई जनता गांवों में निवास करती है। गांवों के विकास के बिना देश का विकास सम्भव नहीं है। गांवों के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि के सहायक धन्धों के रूप में दुग्ध, मुर्गीपालन, कुक्कुटपालन आदि का भी विकास हुआ है। गांवों में कपड़ा बुनने, मजदूरी करने तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों में भी बड़ी संख्या में रोजगार उपलब्ध है। सहकारिता ने इन सभी क्षेत्रों के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कृषि एवं साख

भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति विशेष अच्छी नहीं रही है। बड़ी संख्या में किसान ऋणग्रस्त हैं। कृषि की नवीन तकनीक के कारण खाद, बीज, कीटनाशक दवाइयों व आधुनिक कृषि यंत्रों के लिए किसान को अधिक वित्त की जरूरत पड़ती है। सहकारी साख व्यवस्था से पूर्व किसान साहूकारों से ऋण लेता था। ये किसान की मजबूरी का फायदा उठाकर उसका हर तरह से शोषण करते थे। प्राथमिक कृषि साख समितियों ने किसानों को साहूकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाई है। इन समितियों द्वारा किसानों को खाद, बीज व कीटनाशक दवाइयों के लिए अल्पकालीन तथा कृषि औजारों के लिए मध्यकालीन ऋण दिया जाता है। इस कार्य में केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा राज्य सहकारी बैंकों की विशेष भूमिका है। भूमि में स्थायी सुधार, ट्रैक्टर, भूमि आदि खरीदने के लिए दीर्घकालीन ऋण प्राथमिक भूमि विकास बैंकों द्वारा सुलभ कराया जाता है। इन बैंकों को राज्य भूमि विकास बैंकों से पुनर्वित्त सुविधा प्राप्त होती है। राज्य सहकारी बैंक तथा राज्य भूमि विकास बैंक, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) से पुनर्वित्त सुविधा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार किसानों को सस्ती ब्याज दर पर ऋण सुविधा प्रदान की जाती है। इससे किसानों को साहूकारों के शोषण से मुक्ति मिली है तथा किसान आधुनिकतम कृषि तकनीकों को अपनाकर अधिक उत्पादन करने में सफल हुआ है। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

सहकारी विपणन

भारतीय किसानों की आय का मुख्य स्रोत उनके द्वारा उत्पादित कृषि उपज है। किन्तु किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। मण्डियों में नाप-तौल में गड़बड़ी, कटौतियां, अधिक नमूना लेना, दलाल व क्रेताओं के बीच गठबन्धन आदि के कारण किसान का शोषण होता है। साहूकारों द्वारा कृषि-उपज मनमाने मूल्यों पर खरीद ली जाती है। सहकारी विपणन समितियों द्वारा अनावश्यक मध्यस्थों को हटाकर किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलवाया जाता है। किसानों को वस्तुओं के वर्गीकरण, प्रमाणीकरण तथा यातायात आदि की सुविधायें प्रदान की जाती हैं। किसानों की उपज को सहकारी गोदामों में रखकर उन्हें वित्तीय सुविधायें प्रदान की जाती हैं, ताकि उन्हें मजबूर होकर गैर-आर्थिक मूल्यों पर अपनी उपज न बेचनी पड़े। इस प्रकार विपणन समितियों ने किसानों को अनेक लाभ दिलवाये हैं। उपभोक्ताओं को भी उचित मूल्य पर अच्छी किस्म की वस्तुयें उपलब्ध कराने में उपयोगी भूमिका निभायी है। इससे उत्पादक को अधिक मूल्य, उपभोक्ता को उत्तम किस्म का माल एवं राष्ट्र को अधिक आय प्राप्त होती है।

सहकारी विधायन अथवा प्रकरण

कृषि उत्पादित वस्तुओं को उपभोग योग्य वस्तुओं में परिवर्तित करने में सहकारी विधायन समितियों का विशेष योगदान मिला है। इस कार्य में सहकारी चीनी मिलें, कपास विधायन समितियां, सूत कातने वाली समितियां, तेल निकालने वाली समितियां, फल तथा शाक प्रकरण, सहकारी शीतागार, धान से चावल बनाने वाली समितियां, बागान उपज की प्रकरण समितियां, चावल मिलें, जूट मिलें आदि विशेष

तथा कार्यशील पूंजी में तेजी से वृद्धि हुई है। 1960-61 में कृषि साख समितियों की संख्या 2,12,129 थी जो घटकर 1970-71 में 1,57,454 तथा 1982-83 में 94,089 हो गयी। इसका मुख्य कारण रिजर्व बैंक एवं राज्य सरकारों द्वारा 1954 के बाद अनार्थिक एवं निष्क्रिय इकाइयों को समाप्त कर फिर से इसका पुनर्गठन एवं नवीनीकरण करना है। सन् 1950-51 में इन समितियों की सदस्यता 51.44 लाख थी जो बढ़कर 1982-83 में 63.50 लाख हो गयी। इन समितियों की कार्यशील पूंजी 40.96 करोड़ रुपये से बढ़कर 1983-84 में 48.41 करोड़ रुपये हो गयी। इन समितियों की परिधि के अन्तर्गत आने वाले गांवों की संख्या तथा ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 1960-61 में 75.1 प्रतिशत था जो 1970-71 में 77.8 प्रतिशत तथा 1980-81 में 96 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि साख समितियां ग्राम स्तर पर कृषि विकास हेतु किसानों को पर्याप्त मात्रा में साख प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। निकट भविष्य में इनके कार्य में और अधिक विस्तार की संभावना है।

इन साख समितियों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों की राशि में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इन समितियों द्वारा प्रदान किये गये अल्प एवं मध्यमकालीन ऋणों की राशि 1950-51 में 23 करोड़ रुपये थी जो बढ़कर 1960-61 में 203 करोड़ रुपये और 1970-71 में 578 करोड़ रुपये हो गयी। ऋण की राशि 1973-74 में 760 करोड़ रुपये और 1979-80 में 1425 करोड़ रुपये थी। छठी पंचवर्षीय योजनावधि में इन समितियों को ऋण प्रदान करने के लिए कुल 3040 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया था जबकि समितियों द्वारा कुल 3050 करोड़ रुपये का ऋण वितरित किया गया। सातवीं योजना में इन समितियों को 5540 करोड़ रुपये के अल्पकालीन तथा 500 करोड़ रुपये के मध्यमकालीन ऋण के रूप में वितरित करने हेतु आवंटित किये गये हैं। चालू योजनावधि (1987-88) के दौरान, इन समितियों द्वारा 3200 करोड़ रुपये के अल्पावधि तथा 325 करोड़ रुपये के मध्यमावधि ऋण के रूप में वितरित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

केन्द्रीय सहकारी बैंक

केन्द्रीय सहकारी बैंक प्राथमिक कृषि साख समितियों को कृषि वित्त की पूर्ति करने के लिए ऋण प्रदान करते हैं। यह बैंक मौसमी कृषि कार्यों के लिए 15 महीनों तक के अल्पावधि तथा मवेशी एवं सिंचाई के लिए पम्पसेट खरीदने, कुएं खुदवाने एवं मरम्मत करने तथा भूमि सुधार के लिए एक से पांच वर्ष के लिए मध्यावधि ऋण प्रदान करते हैं। ये बैंक राज्य सहकारी बैंक, तथा व्यापारिक बैंकों से उचित जमानत, नकद साख, अधिविकर्ष तथा अग्रिम के रूप में ऋण प्राप्त कर सकते हैं। इस समय देश में 338 केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं, जिनकी सदस्य संख्या 8 लाख तथा कार्यशील पूंजी 4681 करोड़ रुपये की है। इनके द्वारा कुल 4143 करोड़ रुपये ऋण के रूप में वितरित किये गये हैं। यह शिखर बैंक से प्राप्त ऋणों में से प्राथमिक साख समितियों को दिये जाने वाले ऋणों पर 1 से 3 प्रतिशत की ब्याज में मार्जिन रखते हैं।

राज्य सहकारी बैंक

राज्य सहकारी बैंक राज्य में कार्य करने वाली सहकारी संस्थाओं के एक संतुलन केन्द्र, समाशोधन गृह तथा वित्तीय संस्था के रूप में कार्य करता है। यह कृषि कार्यों एवं फसलों के विपणन के लिए तथा कृषि विकास के क्षेत्र में विभिन्न गतिविधियों को बढ़ावा देने हेतु अल्पावधि ऋण पर पुनर्वित्त देती है जिसे 18 महीनों में वापस करना होता है। पुनर्वित्त पर ब्याज की दर कृषि कार्यों के लिए बैंक दर से 3 प्रतिशत कम तथा फसलों के विपणन के लिए बैंक दर के बराबर निर्धारित है। अल्पावधि ऋणों को सूखे, अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदायों की स्थिति में मध्यमावधि ऋणों में परिवर्तित किया जाता है, जिसकी अवधि सात वर्ष से अधिक नहीं होती है। 1950-51 में देश में मात्र 14 राज्य सहकारी या शीर्ष बैंक थे जिनकी सदस्यता 18,618 थी। इन बैंकों की अंश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी क्रमशः 1.35 करोड़ रुपये तथा 30.45 करोड़ रुपये की थी। वर्तमान में 27 राज्य सहकारी बैंक कार्य कर रहे हैं, जिनकी सदस्यता 36,000 है। इनकी अंश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी क्रमशः 64 करोड़ रुपये तथा 3275 करोड़ रुपये की है। 1981-82 तक इस बैंक द्वारा 3541 करोड़ रुपये का ऋण वितरित किया गया था।

दीर्घकालीन सहकारी साख

देश में नियोजित कृषि विकास कार्यक्रमों के लिए दीर्घकालीन साख की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली संस्था के रूप में केन्द्रीय एवं प्राथमिक भूमि विकास बैंकों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह किसानों को भूमि खरीदने, पुराना ऋण चुकाने, भूमि छुड़ाने, कृषि व भूमि में स्थायी सुधार करने तथा अन्य कृषि विकास सम्बन्धित कार्यक्रमों के लिए दीर्घकालीन साख प्रदान करते हैं। यह किसानों को सामान्यतया 10 से 20 वर्ष तक की अवधि के ऋण प्रदान करते हैं। इसकी अवधि की मात्रा एवं उसके उद्देश्य के आधार पर निर्धारित की जाती है। इसके अतिरिक्त यह लघु सिंचाई कार्य, यंत्रीकरण, मुर्गी पालन, भेड़ पालन, मत्स्य पालन, डेरी पालन इत्यादि के लिए दिये गये दीर्घकालीन ऋण पर पुनर्वित्त प्रदान करता है। बैंक के ऋण पर ब्याज की दर लघु सिंचाई के लिए

6.5 प्रतिशत तथा अन्य कृषि विकास कार्यों के लिए 7.5 प्रतिशत है। लघु किसानों के लिए ब्याज की दर 6.5 प्रतिशत है। यह आंका गया है कि हाल के वर्षों में, बैंक के कुल ऋण का 88 प्रतिशत भाग उत्पादन कार्यों के लिए प्रदान किया गया है, जिसमें 46 प्रतिशत लघु सिंचाई तथा 24 प्रतिशत नये यंत्रों को खरीदने के लिए ऋण दिये गये हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनावधि में भूमि बंधन बैंक को भूमि विकास बैंक में परिवर्तित कर दिया गया तथा उन्हें उत्पादनोन्मुख कार्यों के लिए अधिकाधिक ऋण देने के लिए प्रोत्साहित किया गया। वर्तमान में, 19 राज्य या केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा 986 प्राथमिक भूमि विकास बैंक कार्य कर रहे हैं। जिन राज्यों में प्राथमिक भूमि विकास की शाखाएं नहीं हैं, वहां केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के माध्यम से ऋण वितरित किया जाता है। 1951-52 में प्राथमिक भूमि विकास बैंकों के द्वारा 1.3 करोड़ तथा केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों के द्वारा 2.5 करोड़ रुपये के ऋण प्रदान किये गये। ये ऋण 1980-81 में क्रमशः 205.8 करोड़ रुपये तथा 308.5 करोड़ रुपये थे। सातवीं योजना के अन्तर्गत तीव्र कृषि विकास के लिए सहकारी भूमि विकास बैंकों को 3885 करोड़ रुपये ऋण के रूप में वितरित करने हेतु आवंटित किये गये हैं, जो छठी योजना की तुलना में लगभग 80 प्रतिशत अधिक है। 1987-88 के दौरान मात्र 750 करोड़ रुपये ही वितरित करने का लक्ष्य था।

कमियां एवं सुझाव

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि सहकारी बैंक कृषि विकास कार्यों के लिए ऋण प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण संस्था है। परन्तु यह वित्तीय एवं प्रशासकीय दृष्टिकोण से अत्यन्त ही दुर्बल है। यह किसानों को कृषि आवश्यकता के लिए पर्याप्त मात्रा में साख प्रदान करने में असमर्थ रही है, क्योंकि अधिकांश प्राथमिक साख समितियों की सदस्यता एवं अंश पूंजी की मात्रा अत्यन्त ही कम है और इन्हें जीवन अयोग्य इकाइयां घोषित किया गया है। द्वितीय इन समितियों का विकास सम्पूर्ण देश में समान रूप से नहीं हुआ है। पिछड़े कृषि वाले राज्यों में, जहां कृषि साख को अधिक आवश्यकता होती है, वहां इन समितियों का विकास सन्तोषजनक नहीं है। तृतीय, इन साख समितियों द्वारा अधिकांशतः बड़े कृषकों को ही लाभ पहुंचा है। रिजर्व बैंक के एक रिपोर्ट के अनुसार 1981-82 में इन समितियों से केवल 31.2 प्रतिशत ऋण सीमान्त एवं लघु किसानों को प्राप्त हो सका, जबकि बड़े किसानों एवं जमींदारों को प्राप्त होने वाला प्रतिशत क्रमशः 65.4 और 3.4 था। चतुर्थ, सहकारी बैंकों द्वारा ऋण के वास्तविक वितरण में बहुत देर होती है। कभी-कभी ऋण वितरण फसलोत्पादन क्रियाओं के पश्चात होता है। पंचम, इन बैंकों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके अतिदेय ऋणों की राशि निरन्तर बढ़ती जा रही है। इन दोषों का एक प्रमुख कारण अकुशल प्रबन्ध है। इन बैंकों का प्रबन्ध अप्रशिक्षित एवं अयोग्य कर्मचारियों द्वारा किया जा रहा है। इन कर्मचारियों को कभी-कभी उचित वेतन भी नहीं मिलता है। अतः केन्द्रीय सहकारी बैंक प्रायः प्राथमिक समितियों के साथ निकट सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ हैं।

भारत में सहकारिता आन्दोलन का बुनियादी उद्देश्य लघु एवं सीमान्त किसानों तथा समाज के दुर्बल वर्गों की सेवा करना है। इन वर्गों की बेहतर सेवा के लिए सहकारी साख समितियों व बैंकों को अपनी ऋण नीतियों में परिवर्तन करना होगा ताकि इन वर्गों के लिए पर्याप्त मात्र में ऋण व्यवस्था हो सके। सर्वप्रथम, प्राथमिक साख, इन समितियों को अपने निजी कोषों में वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसके लिए बड़े किसानों के अंश पूंजी में वृद्धि तथा लघु किसानों को छूट देने की व्यवस्था होनी चाहिए। द्वितीय, इन समितियों को अपने अतिदेय ऋणों की राशि घटाने के लिए सम्पूर्ण देश में ऋण वसूली अभियान छेड़ना चाहिए। तृतीय, जीवन-अयोग्य इकाइयों को पुनर्संगठन एवं एकीकरण करके जीवन योग्यता के आधार पर शक्तिशाली इकाई के रूप में संगठित करने की आवश्यकता है। चतुर्थ, इन समितियों के कुशल प्रबन्ध के लिए कर्मचारियों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। अन्त में, इन समितियों द्वारा प्रदान किये गये ऋणों को विपणन समितियों से जोड़ना चाहिए।

उपसंहार

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि देश में सहकारी बैंक नियोजित कृषि एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए किसानों को सस्ते ब्याज की दर पर आवश्यकतानुसार अल्पकालीन, मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज यह बैंक किसानों की कुल कृषि साख आवश्यकता का 35 प्रतिशत ऋण के रूप में प्रदान करता है; जबकि 1951-52 में इसके द्वारा प्रदान ऋण मात्र 3.1 प्रतिशत था। कृषि क्षेत्र के विकास में सहकारी बैंक के बढ़ते हुए भूमिका को ध्यान में रखकर केन्द्र एवं राज्य सरकारें इसके सबल विकास के लिए हर सम्भव प्रयास कर रही हैं तथा जीवन अयोग्य इकाइयों को एकीकरण करके एवं उनकी अंश पूंजी में वृद्धि कर शक्तिशाली बना रही हैं। अतः सहकारी बैंकों को कुशल बनाकर ग्राम्य स्तर पर साख संरचना को एक सबल आधार प्रदान किया जा सकता है।

ग्राम + पोस्ट–
भाया—मोतिहारी-8454

उत्तर प्रदेश में सहकारी प्रक्रिया इकाइयां—वर्तमान स्थिति

सुनील कुमार सिंह

वर्ष 1904 से प्रारम्भ सहकारिता आन्दोलन आज विभिन्न क्षेत्रों में पर्दापण कर चुका है। इससे कृषि साख, आवास, दुग्ध, चीनी, वस्त्र तथा श्रम आदि सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं जैसे भूमि सुधार, कृषि यंत्र, बीज, उर्वरक सिंचाई आदि। इसके अतिरिक्त सहकारिता द्वारा कृषकों द्वारा उत्पादित प्राथमिक कृषि उत्पादन को उपयोग योग्य बनाकर बेचने के उद्देश्य से इकाइयों की स्थापना की गई है। इन इकाइयों में प्रक्रिया इकाइयों का स्थान महत्वपूर्ण है।

प्रक्रिया इकाइयों का आशय ऐसी इकाइयों से है जिसमें कच्चे माल के रूप में प्रयोग वस्तुओं के रूप परिवर्तन करके उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जाती है अर्थात कृषि उत्पादित वस्तुओं को एक प्रक्रिया से गुजार कर उपभोग योग्य बनाया जाता है जैसे गेहूं से आटा, धान से चावल, गन्ने से गुड़ या चीनी तथा कपास से सूत या गांठ बनाना आदि। प्रक्रिया द्वारा शीघ्र नाशवान वस्तुओं को अधिक समय तक रखने योग्य बनाया जा सकता है।

वर्तमान सहकारी क्षेत्र में बृहत आकार की प्रक्रिया इकाइयां तथा लघु आकार की प्रक्रिया इकाइयां कार्यरत हैं। बृहत आकार की इकाइयों में धान मिलें, दाल मिलें, तेल मिलें एवं जूट मिलें आदि प्रमुख हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

बृहत आकार की प्रक्रिया इकाइयां

1. **सहकारी चीनी मिल :** चीनी उद्योग देश का महत्वपूर्ण उद्योग है। राष्ट्र के कुल चीनी उत्पादन का 56 प्रतिशत सहकारी चीनी मिलों द्वारा किया जाता है। प्रदेश में सर्वप्रथम चीनी मिल की स्थापना वर्ष 1956 में जनपद नैनीताल में हुई थी। पांचवीं पंचवर्षीय योजनावधि में सहकारी चीनी मिलों की स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप वर्ष 1979-80 तक कुल 16 सहकारी मिलों की स्थापना हुई। छठी ंचवर्षीय योजना के दौरान 10 सहकारी चीनी मिलों की ना की गयी।

सहकारी चीनी मिलों की वर्तमान गन्ना पेराई क्षमता 1250 से 3500 मी. टन प्रतिदिन है। सातवीं योजनावधि में कार्यरत चीनी मिलों की गन्ना पेराई क्षमता तथा विस्तारीकरण के फलस्वरूप सहकारी क्षेत्र की कुल गन्ना पेराई क्षमता 40550 मी. टन हो गई है जो प्रदेश के चीनी उद्योग की कुल पेराई क्षमता का 25 प्रतिशत है।

चीनी मिलों के उपोत्पाद शीरा व खोई का समुचित उपयोग कर उनसे लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से सहकारी क्षेत्र में अब तक चार यूनिट स्थापित की जा चुकी हैं जिनसे लगभग 30,000 ली. प्रतिदिन अल्कोहल प्राप्त किया जाता है। इस उपोत्पाद से प्राप्त लाभ को देखते हुए सातवीं योजनावधि में पांच अन्य स्थानों पर यूनिट स्थापित करने की योजना थी।

प्रदेश की सहकारी चीनी मिलों का प्रबन्ध व नियंत्रण उ. प्र. सहकारी अधिनियम 1965 के अन्तर्गत होता है। प्रदेश में सहकारी चीनी मिलों की शीर्ष संस्था उ. प्र. सहकारी चीनी मिल संघ है जो सदस्य मिलों से स्थानीय तथा राज्य स्तरीय समस्याओं के सम्बन्ध में परामर्श तथा मार्गदर्शन करती है।

सहकारी चीनी मिलें अपने सतत् प्रयासों के फलस्वरूप उत्पादन के क्षेत्र में दिन-प्रति-दिन प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। इन मिलों को उन्नति के पर्याप्त अवसर प्रदान करने हेतु एवं उनकी आवश्यकता के अनुरूप गन्ना उपलब्ध कराने के लिए गन्ना विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है। जिसके अन्तर्गत भूमि उपचार, बीज उपचार, यूरिया व कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग गन्ना कृषकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त गन्ना कृषकों को फसल का उत्पादन बढ़ाने हेतु आवश्यकतानुसार ऋण की भी सुविधा प्रदान की जाती है।

सहकारी चीनी मिलों की पंचवर्षीय योजनावधि में प्रगति निम्न प्रकार रही है :

योजना	मिलों की संख्या	चीनी उत्पादन (लाख वि. में)	पेराई क्षमता (मी. टन. प्रतिदिन)
पांचवीं योजना 1975-80	16	13	20,100
छठी योजना 1980-85	26	30	38,050
सातवीं योजना 1985-90	32	50	50,050

स्रोत : उ. प्र. सहकारी चीनी मिल संघ लि. लखनऊ की रिपोर्टों मे संकलित

2. सहकारी कताई मिलें: कताई मिलों का उद्देश्य बुनकरों को आसान एवं उचित मूल्य पर धागा उपलब्ध कराना है। वर्ष 1975 से पूर्व प्रदेश के हथकरघा बुनकरों के लिए धागे की पूर्ति गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि प्रदेशों से की जाती थी जो बुनकरों को भाड़ा, चुंगी, बीमा आदि व्ययों के कारण महंगे पड़ते थे। इस कठिनाई को देखते हुए प्रदेश में कताई मिलों की स्थापना पर जोर दिया गया। सहकारी क्षेत्र में कताई मिलों की स्थापना बुनकर तथा हथकरघा बुनकर समितियों द्वारा की गई है। प्रदेश की प्रथम कताई मिल की स्थापना जनपद इटावा में हुई जिसने अगस्त 1964 से कार्य करना प्रारम्भ किया।

सहकारी कताई मिलों का प्रबन्ध, नियंत्रण व्यवस्था एवं मार्गदर्शन उपलब्ध कराने हेतु प्रदेश एवं राष्ट्रीय स्तर पर संगठन है। प्रदेश में सहकारी कताई मिलों में प्रबन्ध, नियंत्रण, वित्तीय सहायता एवं विस्तार के लिए उ. प्र. कताई मिल फेडरेशन की स्थापना वर्ष 1982 में की गयी। उस समय सहकारी क्षेत्र में केवल 4 कताई मिलें थीं तत्पश्चात वर्ष 1985-87 तक 25,000 तकुओं की क्षमता वाली 7 कताई मिलों की स्थापना की गई। इस प्रकार वर्तमान में 11 सहकारी कताई मिलें कार्य कर रही हैं जिनकी क्षमता 2.75 लाख तकुऐ हैं।

पिछले पांच वर्षों में सहकारी कताई मिलों की प्रगति निम्न प्रकार रही है:

वर्ष	उत्पादन (लाख किलो में)
1981-82	67.53
1982-83	84.46
1983-84	71.29
1984-85	48.98
1985-86	171.99
1986-87	242.65

स्रोत : उ. प्र. सहकारी कताई मिल फेडरेशन, कानपुर

लघु आकार की प्रक्रिया इकाइयां

1. सहकारी धान मिलें : कृषकों की प्रमुख उपज का समुचित उपयोग करने हेतु धान उत्पादित क्षेत्रों में सहकारी धान मिलों की स्थापना की गई। इन मिलों का मुख्य उद्देश्य धान का उचित मूल्य पर सीधे क्रय करके कृषकों को बिचौलिओं के शोषण से बचाना है। प्रदेश में वर्ष 1987-88 तक 23 धान मिलों की स्थापना सहकारी क्षेत्र के अंतर्गत की जा चुकी है। इनमें से 16 मिलें सहकारी क्रय-विक्रय समितियों द्वारा, 3 मिलें जिला सहकारी संघ तथा एक पी. सी. एफ. द्वारा स्थापित की गयी हैं। 3 इकाइयां अनार्थिक हैं जिन्हें स्थाई रूप से बन्द किया जा चुका है। वर्तमान में केवल 20 धान मिलें ही कार्य कर रही हैं। जिनकी प्रगति निम्न विवरण से स्पष्ट है :

वर्ष	उत्पादन (कु.)
1984-85	175640
1985-86	231920
1986-87	75779
1987-88	89006

स्रोत : निबन्धक, सहकारी समितियां, लखनऊ

कुल स्थापित 23 धान मिलों में गत 4 वर्षों में क्रमशः 8,7,3 एवं 5 इकाइयों ने लाभ पर कार्य किया। शेष मिलों में उत्पादन कम होने के कारण हानि उठानी पड़ी। इसका प्रमुख कारण धनाभाव था। पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध न होने के कारण मिलों द्वारा सीजन पर आवश्यकतानुसार धान स्टोर नहीं किया जा सका। फलस्वरूप कच्चे माल के अभाव में मिलें अधिक समय बन्द रहीं। शासन द्वारा निर्धारित लेवी नीति के अनुसार कृषकों की प्रक्रिया कस्टम आधार पर किया जाना सम्भव नहीं होता साथ ही लेवी नीति के कारण सहकारी धान मिलों की आर्थिकता प्रभावित होती है, इसी कारण धान मिलें अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सफल नहीं हो पाती हैं।

2. सहकारी दाल मिलें : दलहनों के प्रचुर उपभोग को देखते हुए सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत दाल मिलों की स्थापना का सुझाव दिया गया। इससे एक तरफ कृषकों की फसल का समुचित उपयोग होगा, दूसरी तरफ उपभोक्ताओं को दलहनों की आपूर्ति करके लाभ का अवसर पैदा होंगे। वर्ष 1987-88 तक प्रदेश में 23 दाल मिलों की स्थापना की जा चुकी है जिसमें से एक मिल पी. सी. एफ. द्वारा, एक मिल उपभोक्ता सह[illegible] संघ द्वारा तथा शेष मिलें सहकारी क्रय-विक्रय समिति[illegible]

स्थापित करायी गयी हैं। इन मिलों में गत चार वर्षों की प्रगति निम्न है:

वर्ष	उत्पादन (कु. में)
1984-85	43674
1985-86	41920
1986-87	67066
1987-88	67130

स्रोत : निबन्धक, सहकारी समितियां, लखनऊ

उपरोक्त विवरण के अनुसार कुल स्थापित 23 धान मिलों में अधिकांश मिलें हानि पर चल रही हैं जिसका प्रमुख कारण मिलों में वित्तीय अभाव था।

3. सहकारी तेल इकाइयां : तिलहन उत्पादन को उचित मूल्य पर कृषकों से सीधे क्रय करके प्रक्रिया के पश्चात उपभोक्ताओं तक पहुंचाने का कार्य सहकारिता के माध्यम से किया जाने लगा है। इन प्रक्रिया इकाइयों की स्थापना का उद्देश्य इन इकाइयों के क्षेत्र के तिलहन उत्पादकों को कच्चे माल की प्रक्रिया से प्राप्त उत्पाद के मूल्य के अन्तर का लाभ दिलाना है। तिलहन की बदली हुई मांग को देखते हुए इस प्रकार सहकारी इकाइयों का भविष्य उज्ज्वल है। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की लघु एवं बृहत दोनों प्रकार की इकाइयों की स्थापना की गयी हैं। संडीला जनपद हरदोई, बिसरोई जनपद बदायूं तथा हल्द्वानी में बृहत काम्पलेक्स की स्थापना की गई है। इन इकाइयों द्वारा पिछले कुछ वर्षों की प्रगति निम्न है:

वर्ष	उत्पादन (कु. में)
1985-86	1,66,350
1986-87	3,050,40
1987-88	2,32,910

स्रोत : निबन्धक, सहकारी समितियां, लखनऊ

4. औषधि निर्माण शाला : पी. सी. एफ. द्वारा संचालित इस आयुर्वेदिक औषधि निर्माणशाला की स्थापना रानीखेत में की गयी है जिसमें विभिन्न प्रकार की औषधियों का उत्पादन किया जाता है। इस इकाई द्वारा निर्मित औषधियों को ग्रामीण अंचलों में उपलब्ध कराने हेतु इनका विपणन ग्रामीण उपभोक्ता बिक्री केन्द्रों एवं साधन सहकारी समितियों के माध्यम से वितरित किये जाने की योजना बनाई गई है ताकि विपणन का लाभ सहकारी समितियों को मिल सके तथा औषधियां प्रत्यक्षत: ग्रामीण लोगों तक पहुंच सकें। इस इकाई द्वारा वर्ष 1985-86 में 6.68 लाख रुपये की दवाइयों की बिक्री हुई जो बढ़कर वर्ष 1986-87 में 20.91 लाख रुपये तथा वर्ष 1987-88 में 29.94 लाख रुपये तक पहुंच गयी। इस उल्लेखनीय प्रगति को देखते हुए इकाई के विस्तारीकरण की योजना चलाई जा रही है।

5. अन्य इकाइयां : इन इकाइयों के अतिरिक्त सहकारी क्षेत्र में निम्न प्रक्रिया इकाइयां कार्य कर रही हैं जिनमें 13 कृषि सेवाई केन्द्र तथा एक जूट बेलिंग इकाई भी है। प्रदेश में कृषकों को कृषि कार्य हेतु उपकरण, ट्रैक्टर आदि की मरम्मत के लिए कार्यशाला आदि कृषि सेवाई केन्द्रों के माध्यम से उपलब्ध कराये जाते हैं। जूट बेलिंग इकाई द्वारा जूट की प्रक्रिया करके उसे विभिन्न तरह से प्रयोग में लाया जाता है।

पी. सी. एफ. द्वारा संचालित कोआपरेटिव रोजिन एण्ड प्रोसेसिंग फैक्ट्री हल्द्वानी (नैनीताल) में स्थापित है जिसमें वन विभाग से प्राप्त लीसा की प्रक्रिया से रोजिन एवं तारपीन का तेल प्राप्त किया जाता है। सहकारी वर्ष 1987-88 में फैक्ट्री द्वारा 29.00 लाख रुपये की रोजिन एवं तारपीन का तेल विक्रय किया गया।

इसके अतिरिक्त पी. सी. एफ. द्वारा एक सोयाबीन एवं वनस्पति उद्योग, एक फर्टीलाइजर ग्रेनुलेशन प्लांट, एक वेजीटेबुल इण्डस्ट्रीज काम्पलेक्स भी कार्यरत हैं।

प्रक्रिया इकाइयों की सफलता को देखते हुए वर्ष 1989-90 में निम्नलिखित प्रक्रिया इकाइयों की स्थापना कराया जाना प्रस्तावित था।

इकाई	संस्था का नाम	अनुमानित लागत (लाख रु. में)
1. साबुन इकाई	उ. प्र. उपभोक्ता सहकारी संघ लि. लखनऊ	40.00
2. जिंक सल्फेट इकाई	उ. प्र. सहकारी संघ लि.	40.00
3. दाल मिल	हमीरपुर एवं बहराइच की एक-एक सहकारी क्रय-विक्रय समिति	30.00

समस्यायें

1. वित्त की अपर्याप्तता होने के कारण अधिकांश प्रक्रिया इकाइयां सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाती हैं। यह देखा गया है कि अधिकांश धान एवं दाल इकाइयां धनाभाव के कारण

ग्राम-विकास में सहकारिता की भूमिका

राधेश्याम भारद्वाज

सिद्धान्त रूप में सहकारिता का अर्थ है—लोगों द्वारा अपनी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिये एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयास करना। दूसरे शब्दों में सहकारिता आर्थिक-सामाजिक विकास का आधार है। भारत की 80 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। अतः इस बहुसंख्यक आबादी के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिये यह जरूरी था कि सहकारी आन्दोलन को दूर-दराज के गांवों तक पहुंचाया जाये। लोकतंत्र में विकास के लिये अधिकाधिक लोगों को भागीदार बनाना अनिवार्य है। सहकारिता लोकतंत्र की सफलता का प्राण है। इसलिये यह जरूरी है कि सहकारिता आन्दोलन में ग्रामीण समुदाय की भागीदारी हो। सहकारिता द्वारा सभी लोग एक मंच पर एकत्रित होकर अपनी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को सुलझाते हैं। सहकारी उद्यम सिर्फ आर्थिक संस्थान नहीं होते, इससे बहुत अधिक उनका महत्व सामाजिक उद्देश्यों के लिये काम करना है। इनका लक्ष्य सिर्फ मुनाफा कमाना नहीं है बल्कि अपने सदस्यों को अपने धन और अर्जित लाभ के द्वारा सेवाएं प्रदान करना है। सहकारिता के अपने नैतिक मूल्य और सिद्धान्त हैं। ये मूल्य और सिद्धान्त सहकारी संस्थानों के आधार-स्तम्भ हैं। यदि इन मूल्यों की उपेक्षा की जायेगी तो सहकारी संस्थान कमजोर पड़ जायेंगे।

ग्रामीण परिवेश और परिस्थितियों में सहकारिता की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। पिछड़े क्षेत्रों में परस्पर सहयोग के बिना विकास संभव ही नहीं है। यह बात आजादी से पहले ब्रिटिश हुकूमत के दौरान ही महसूस कर ली गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देश में कुछ सहकारी संस्थान बन गये थे। इनके अलावा निधियां, ट्रस्ट, इन्स्टीट्यूट और समितियां अस्तित्व में आ गई थीं। ये सभी स्वयं सेवी संस्थाएं निर्धन लोगों को सहकारिता अथवा संस्थाओं के माध्यम से आवश्यक उपभोगता वस्तुओं की आपूर्ति करने लगीं। ब्रिटिश सरकार ने इन संस्थानों की स्थापना की। 1904 में सहकारिता के विचार ने ठोस रूप ग्रहण किया जब सहकारी ऋण समिति अधिनियम पारित किया गया। इसका उद्देश्य गांवों में कर्जदारी की समस्या को सुलझाना और ऋण समितियों का पंजीकरण करना था। 1906-7 के दौरान देश में सहकारी समितियों की संख्या 843 थी और 90,840 लोग इनके सदस्य थे। 1910-11 में सहकारी समितियों की संख्या बढ़कर 5,321 और सदस्यों की 3,05,060 हो गयी। यह बढ़ोतरी बड़ी तीव्र और उत्साहवर्द्धक थी। स्पष्ट है कि सहकारिता की धारणा के विकास ने जोर पकड़ना शुरू किया। 1904-1911 के बीच सहकारी ऋण समिति अधिनियम के परिपालन एवं सहकारी समितियों की प्रगति पर कड़ी निगरानी रखी गई। एक सीमा तक सहकारी समितियों ने किसानों को लाभ पहुंचाया किंतु यह प्रगति अनेक कारणों से बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं रही। इनमें से कुछ कारण इस प्रकार हैं—प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव, ऋण जारी करने में देरी और राशि अपर्याप्त होना, ऋणों की वसूली में कठिनाइयां, दूषित ऋण प्रणाली, केंद्रीय बैंकों के गठन संबंधी प्रावधानों का अभाव तथा समितियों के शहरी और ग्रामीण आधार पर उपयुक्त वर्गीकरण का न होना।

बाद में 1912 में सहकारी समिति अधिनियम में गैर ऋण समितियों के साथ सहकारी परिसंघों के पंजीकरण की भी व्यवस्था की गई। उसके बाद से सहकारी आंदोलन ने कृषि ऋण, कृषि उपज के विधायन और विपणन, कृषि सामान की आपूर्ति और उपभोगता वस्तुओं के वितरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। आज देश में सहकारिता आन्दोलन दिन-प्रतिदिन विशाल होता जा रहा है। देश में विभिन्न प्रकार के 3 लाख 48 हजार एक सौ 54 सहकारी संगठन हैं, जिनकी सदस्य संख्या 15 करोड़ है। इनमें से 3 लाख 44 हजार 8 सौ 90 प्राथमिक सहकारी संगठन हैं, जिनकी सदस्य संख्या लगभग 14 करोड़ 30 लाख है। सहकारिता आन्दोलन में काफी वैविध्य आया है। राष्ट्रीय स्तर के लगभग 20 परिसंघ अस्तित्व में आ चुके हैं। केंद्रीय सहकारी कानूनों के अलावा सभी राज्यों ने भी सहकारी कानून बनाये हैं। विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी संख्या में सहकारी परिरक्षण और उत्पादन इकाइयों का गठन हुआ है। इनमें चीनी, उर्वरक, डेयरी, तिलहन, भारी इंजीनियरी, कपड़ा

आदि प्रमुख हैं। सरकार ने सहकारिता के क्षेत्र में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम और राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से बड़ी धनराशि नियोजित की है। सहकारी समितियों में से 65 प्रतिशत समितियां ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों, भूमिहीन श्रमिकों और अन्य वर्गों के लिये विशेष तौर पर काम कर रही हैं। उपभोक्ता सहकारी भंडार लोगों को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति में अहम् भूमिका अदा कर रहे हैं। केंद्रीय सहकारी बैंक और अन्य बैंकिंग संस्थान कृषि और गैर-कृषि उद्देश्यों के लिये रियायती दर पर ऋण वितरित करते हैं।

राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम

राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ऐसा बेजोड़ संगठन है जो सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर ग्रामीण आर्थिक विकास से संबद्ध कार्यक्रमों/गतिविधियों की योजना, विकास और उन्हें वित्तीय सहायता देने की जिम्मेदारी निभा रहा है। यह निगम विभिन्न स्तरों पर सहकारी समितियों की भण्डारण क्षमता बढ़ाने के कार्यक्रम का नियोजन, प्रोत्साहन और वित्त की व्यवस्था करता है। 1988-89 के दौरान राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ने विभिन्न सहकारिता विकास कार्यक्रमों पर 2 अरब से अधिक धन खर्च किया। इस दौरान निगम ने इन कार्यक्रमों पर 2 अरब 5 करोड़ 60 लाख रुपये खर्च किये जबकि इससे पहले वर्ष में 1 अरब 71 करोड़ रुपये खर्च किये थे। इस प्रकार निगम ने सहकारी गतिविधियों पर 20 प्रतिशत अधिक खर्च किया। निगम ने कमजोर वर्गों से सम्बद्ध सहकारी संगठनों जैसे डेयरी, मुर्गीपालन, मछलीपालन, हथकरघा और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सहकारी संगठनों के वास्ते 19 करोड़ 14 लाख रुपये खर्च किये। कृषि उत्पादों के विपणन में विपणन सहकारी समितियों का महत्वपूर्ण योगदान है। सहकारी समितियों द्वारा 1988-89 के दौरान 54 अरब रुपये मूल्य के कृषि उत्पादों का विपणन किया गया। राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ने विपणन के विकास के वास्ते 20 करोड़, 79 लाख रुपये और निवेश के वितरण के लिये 93 लाख 67 हजार रुपये की सहायता प्रदान की। निगम की सहायता से सहकारी संगठनों की कुल भंडारण क्षमता 31 मार्च, 1989 को 1 करोड़ 9 लाख 39 हजार टन हो गयी थी।

निगम ने मध्य प्रदेश में तेंदु पत्तों की वसूली में सहकारिता को बढ़ाने के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया है। निगम ने 4 करोड़ 47 लाख रुपये मुनाफे के रूप में मंजूर किये जिससे 1988-89 के दौरान जनजातीय लोगों को तेंदू के 1000 बंडलों वाले बैग का मूल्य 150 रुपये मिलने लगा जबकि पहले इसके बदले उन्हें 85 रुपये मिलते थे। इस कार्यक्रम से तेंदू पत्ता एकत्रित करने वाले 10 लाख लोग लाभान्वित हुए।

राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ने चीनी और तिलहनों की परिशोधन इकाइयों के वास्ते भी काफी सहायता दी है। चीनी सहकारी संगठनों को निगम ने 1988-89 के दौरान विभिन्न योजनाओं जैसे शेयर पूंजी भागीदारी, आधुनिकीकरण, विस्तार और सहयोगी उत्पादों के वास्ते 27 करोड़, 58 लाख रुपये की सहायता पहुंचायी। छह तिलहन परिशोधन इकाइयों की स्थापना के वास्ते निगम ने 94 करोड़ 72 लाख रुपये मंजूर किये।

इफ्को

भारतीय कृषक खाद सहकारी समिति लिमिटेड (इफ्को) भारत में बड़े पैमाने पर खाद उत्पादन के क्षेत्र में अनुपम सहकारी उद्यम है। यह देश में प्रमुख खाद उत्पादकों में से एक है। खाद के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से यह उद्यम 13 प्रतिशत नाइट्रोजन और 29 प्रतिशत फास्फेट खाद तैयार करता है। सहकारी समितियों और सरकार की मदद से 1967 में इफ्को का पंजीकरण हुआ था। इसका उद्देश्य संबद्ध सहकारी समितियों के किसानों के लाभ के लिये खाद का उत्पादन और विपणन करना था। लगभग 26 हजार सहकारी संस्थाएं इफ्को की सदस्य हैं।

इफ्को खाद के विपणन के साथ आधुनिक कृषि तकनीक के प्रचार-प्रसार पर भी जोर देता है। इस उद्देश्य के लिये उसके 300 से अधिक प्रशिक्षित कृषि तकनीकी विशेषज्ञ गांवों में जाकर किसानों की सहायता करते हैं। ये विशेषज्ञ गांव-गांव जाकर खाद, उन्नत बीजों और अन्य निवेशों के संतुलित उपयोग, मिट्टी के परीक्षण और सहकारी समितियों से ऋण प्राप्त करने के लिये मार्ग निर्देशन करते हैं।

फल और सब्जी उद्योग में सहकारिता

भारत में अनेक प्रकार के फल और सब्जियों का उत्पादन होता है। देश के कुल फसल क्षेत्र 18 अरब 3 करोड़ 60 लाख हैक्टेयर में से लगभग 6.7 प्रतिशत में बागवानी की जाती है। इसमें 9 करोड़ टन फल और सब्जियों का उत्पादन होता है। कुछ समय पहले बागवानी उत्पादन और फसल प्राप्ति के बाद की गतिविधियों के बारे में स्वामीनाथन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में अनुमान व्यक्त किया था कि उपभोगता तक पहुंचते-पहुंचते 25 प्रतिशत उत्पादन गायब हो जाता है क्योंकि फल-प्राप्ति के बाद की गतिविधियों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। यह नुकसान उत्पादन को लाने ले जाने, भंडारण और विपणन के दौरान होता है। परिणामस्वरूप जब उत्पादन अधिक होता है

तो मूल्य इतना कम हो जाता है कि किसानों को उत्पादन लागत से भी कम दाम मिल पाता है।

बागवानी उत्पादकों को इस समस्या से उबारने में भी सहकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इस संदर्भ में राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम तथा राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन परिसंघ ने राष्ट्रीय स्तर पर सहायता पहुंचायी है। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम फल और सब्जियों से जुड़े सहकारी संगठन की शेयर पूंजी और विपणन गतिविधियों में सुधार के वास्ते 5 लाख रुपये तक सहायता प्रदान करता है। निगम इन सहकारी समितियों को परिवहन सुविधाओं के वास्ते ट्रक, टैम्पो आदि वाहन खरीदने के लिये सहायता प्रदान करता है ताकि उत्पादों को उत्पादन क्षेत्र से उपभोक्ता तक जल्द पहुंचाया जा सके।

निगम ने अब तक सहकारी समितियों को फल और सब्जियों के विपणन के वास्ते 5 करोड़ रुपये मंजूर किये हैं। राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन परिसंघ (नेफेड) ने राष्ट्रीय स्तर पर आलू, प्याज, अदरक, सेब आदि अनेक उत्पादों की वसूली और विपणन का काम अपने हाथ में लिया है। इस काम में सम्बद्ध राज्य परिसंघ और प्राथमिक विपणन समितियां नेफेड की सहायता करते हैं। इसके अलावा लगभग 12 राज्य/केंद्रीय स्तर की समितियां और 275 प्राथमिक विपणन समितियां फल और सब्जियों के विपणन में सीधे संलग्न हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान ताजा फलों और सब्जियों की विपणन गतिविधियों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। ऐसी योजना है कि वसूली और उपभोगता के स्तर पर वितरण के वास्ते समन्वित परियोजनाएं शुरू की जायेंगी। ये परियोजनाएं सहकारिता की दृष्टि से कम विकसित क्षेत्रों में शुरू करने का प्रयास किया जायेगा। फल और सब्जियों की डिब्बा बंदी के वास्ते सहकारिता के क्षेत्र में आधुनिक तकनीक वाली बड़ी इकाइयां स्थापित की जायेंगी। इन कार्यक्रमों पर आठवीं योजना के अंतर्गत 12 करोड़ रुपये खर्च का अनुमान है जबकि 7वीं योजना के दौरान 3 करोड़ रुपये खर्च किये गये थे।

मछली पालन और सहकारिता

भारत दक्षिण-पूर्व एशिया के उन देशों में से एक है जो मछली संसाधनों में सम्पन्न हैं किन्तु इस देश में मछली उद्योग अभी तक उचित ढंग से संगठित नहीं किया गया है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में देश की संभावनाओं का उपयोग करने के लिये उत्पादन बढ़ाने के पर्याप्त प्रयास नहीं हो पाये हैं। इस उद्योग में छोटे आदमी के हित सुरक्षित नहीं हैं। मछली उत्पादों की डिब्बाबंदी एक और समस्या है, जिससे इनकी विपणन गतिविधियों पर प्रभाव पड़ता है। विपणन के क्षेत्र में व्यापारी और बिचौलिये, मछुवारों और उपभोगता दोनों को हानि पहुंचाते हैं। इन सब बातों को देखते हुए मछली-उद्योग में सहकारिता का महत्व बढ़ जाता है। मत्स्य क्षेत्र और कृषि क्षेत्र में लगभग समान स्थितियां हैं। निचले स्तर पर लोग निर्धन और निरक्षर हैं, इसलिये असहाय हैं। उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता है यह तभी संभव है जब उन्हें संस्थागत मूलभूत ढांचा प्रदान किया जाये जो उनकी आवश्यकता के अनुरूप आधुनिक हो। इस दृष्टि से सहकारी संगठन हो सकता है।

भारत में मछली उद्योग में तीन स्तरों वाली सहकारी संरचना उपलब्ध है। (i) गांव अथवा गांवों के समूह के वास्ते प्राथमिक सहकारी (ii) जिला अथवा क्षेत्रीय परिसंघ और (iii) राज्य स्तर पर मछली सहकारी परिसंघ जो समूचे सहकारी क्षेत्र के लिये शिखर निकाय है। हाल ही में एक राष्ट्रीय परिसंघ का गठन भी किया गया है। यह एक ऐसा संगठन है जिसकी भारत में मछली सहकारिता के संगठनात्मक स्तर पर 7950 प्राथमिक सहकारी समितियां हैं जिनकी सदस्य संख्या आठ लाख है। इन समितियों के 68 राज्य और केंद्रीय/जिला परिसंघ हैं। 1982 के दौरान इनका कुल व्यापार 45 करोड़ रुपये का था। इसमें महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक के परिसंघों ने कुल कारोबार में 82 प्रतिशत का योगदान दिया।

अन्य सहकारी संगठन

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के क्षेत्र में कताई मिलें, डेयरी और मुर्गीपालन सहकारी समितियां भी ग्राम विकास में योगदान कर रही हैं। कताई मिलों ने राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय सहकारी कताई मिल परिसंघ लिमिटेड स्थापित किया है। यह परिसंघ मौजूदा मिलों के विस्तार और नई मिलों की स्थापना के लिये सलाहकार सेवाएं देता है। यह एक विकासोन्मुख और प्रोत्साहित करने वाला संगठन है। प्राथमिक दूध सहकारी समितियों के दो सौ से अधिक परिसंघ हैं जो दूध और दूध से बनी वस्तुओं का सहकारिता के आधार पर व्यापार करते हैं। इसी प्रकार देश में डेढ़ हजार से अधिक मुर्गीपालन सहकारी समितियां हैं।

इनके अलावा डेयरी, मछलीपालन और मुर्गीपालन जैसे कार्यक्रमों के लिये कार्यात्मक सहकारी समितियां भी गठित की गई हैं जो कमजोर वर्गों के कामकाज से सम्बद्ध हैं। ऐसी समितियां छोटे और बहुत छोटे किसानों तथा मछुवारों जैसे विभिन्न वर्गों के लिये रोजगार और आय बढ़ाने के अवसर प्रदान करती हैं। राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता देता है।

523, झड़ौदा कलां, नई दिल्ली-110072

डा. आम्बेडकर और ग्राम-विकास

डा. प्रभाकर माचवे

डा. भीमराव रामजी सकपाल का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महू (मध्यप्रदेश) में हुआ। मां का नाम भीमाबाई था। रामजी सकपाल जाति से 'महार' थे और महार रेजिमेंट में वह एक सामान्य सैनिक थे। वह फौजी स्कूल के मुख्याध्यापक बने और सूबेदार मेजर पद तक पहुंचे। वह नाथपंथी थे। घर में रामायण, ज्ञानेश्वरी, कबीर के पद पढ़े जाते। सौ साल पहले महू एक 'गांवड़ा' था और मालवे में वहां ब्रिटिश छावनी थी। बस्ती भी बहुत कम थी। पिछले साल 14 अप्रैल को हम महू में एक जलसे में गये जहां आसपास के गरीब और अछूत जमा हुए थे, उनके जन्मस्थान पर श्रद्धासुमन अर्पित करने। वहां हम सरल मराठी में बोले तो वे लोग परम संतुष्ट हुए। उन्हें लगा कोई न कोई हमारी 'भाषा' समझने वाला है। सब ही 'बौद्धिक' या 'साहब लोग' नहीं हैं। इस वर्ष वहां बहुत बड़ा जलसा टाउन हाल में हुआ। एक 'आम्बेडकर सामाजिक शोध संस्थान' वहां पर स्थापित होने वाला है। बाबासाहब के व्यक्तित्व के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डाला गया—दलितों के मसीहा, संविधान निर्माता, विद्याप्रेमी, बौद्धधर्म के उपासक आदि। इन जलसों में जाकर हमें लगा कि ग्रामीण और पिछड़े वर्गों में विकास केवल कागज पर ही नहीं हुआ, कुछ रोशनी उन अंधेरे गहरे तल तक पहुंची है, परन्तु मंजिल अभी बहुत दूर है। किसानों की और पिछड़ी हुई जातियों की, अछूत और हरिजनों की समस्याएं, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कई दृष्टियों में ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं।

भीमराव आम्बेडकर की प्रारंभिक शिक्षा सातारा व बंबई में हुई। स्कूल में आम्बेडकर नामक एक ब्राह्मण अध्यापक थे। उन्हें इस लड़के पर विशेष वात्सल्य-स्नेह था। उनका मूल नाम आम्बाबडेकर (उस गांव के रहने वाले जहां आम और वट या बरगद के पेड़ हैं) था। यह उन्हें पसंद नहीं था, तो सकपाल से भीम का नाम आम्बेडकर कर दिया। अब कुछ लोग कहते हैं कि कोंकण में आंबिड़वे गांव का यह वर्ण विपर्यय हो गया। जो हो, गांव की गरीबी और अछूतों के साथ बहुत बुरा सलूक उन्होंने बहुत निकट से देखा और भोगा था। बी. ए. पास होने पर बड़ौदा के महाराजा श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड ने उन्हें शिष्यवृत्ति दी और वे अमेरिका गये जहां चार वर्ष अध्ययन करके अर्थशास्त्र में 'भारतीय राष्ट्रीय नफे का हिस्सा—एक ऐतिहासिक परिशीलन' पर अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से 1916 में पी. एच. डी. की पदवी हासिल की। स्कालरशिप बंद हो जाने से वह भारत में आ गये। उन्हें महाराज ने सचिवालय में अच्छी नौकरी दी। परन्तु अस्पृश्य जाति से होने से उनकी फाइलें चपरासी नहीं छूते थे। मुंह पर फेंक देते थे। पानी भी उन्हें पीने को नहीं दिया जाता। यह अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ। उन्होंने नौकरी छोड़ दी। 'मूकनायक' नाम से दलितों की एक मासिक पत्रिका 1920 में शुरू की।

कोल्हापुर रियासत के शाहू छत्रपति महाराज ने उन्हें आर्थिक सहायता दी। वह बेरिस्टर होने के लिए लंदन रवाना हुए। वहां लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स से आपने 'दि प्रॉब्लम ऑफ दि रूपी' (रुपये की समस्या) विषय पर शोध-प्रबंध लिखकर डी. एस. सी. की उपाधि ली। वह इस तरह की पदवी प्राप्त करने वाले पिछड़े वर्ग के पहले भारतीय थे। विदेश यात्रा में आम्बेडकर भूखे पेट रहकर अध्ययन करते थे। किताबें खरीदने का बड़ा शौक था। अमेरिका से लौटे तो 2000 ग्रंथ लेकर। लंदन से लौटे तो चार बड़े खोखे सिर्फ किताबों के ही थे। जब स्वदेश लौटे तो उन्हें यह वर्ण-भेद, भारत में ऊंच-नीच, जातियों में असमानता बहुत अखरी। आपने तय किया इन मूक, चुपचाप अन्याय सहने वाली वंचित-मुंचित अल्पसंख्यक तथाकथित निम्न जाति के दुखों को वाणी देनी ही होगी। 'मूकनायक' के बाद बाबा साहब ने 'बहिष्कृत भारत', 'जनता', 'समता' और 'प्रबुद्ध भारत' नामक पत्रिकाएं मराठी में निकालना शुरू किया। उनके विचार स्वतंत्र और विद्रोही थे। इस कारण से उनके पत्रों की बिक्री ज्यादा नहीं होती थी।

इसी समय नासिक में मीठे पानी का तालाब सवर्णों के लिए था और अछूतों को गंदा-खारा पानी पीना पड़ता था, इस अन्याय के विरोध में बाबा साहब ने मार्च 1927 में सत्याग्रह

किया। यह क्या बात हुई कि ईश्वर की नियामत पानी भी सबको एक जैसा मुहैया न हो। इसी के साथ सवर्णों के राममंदिर में हरिजनों के प्रवेश के मार्च 1930 में सत्याग्रह का नेतृत्व भी बाबा साहब ने किया। 1930 से 1932 तक ब्रिटिशों ने उन्हें दलित वर्ग के प्रतिनिधि के नाते गोलमेज परिषद का सदस्य बनाया। उन्हें महात्मा गांधी के विरोध में खड़ा किया गया। अल्पसंख्यक अछूतों को स्वतंत्र मत-क्षेत्र मिलना चाहिए, इस बात को उन्होंने उठाया। वह उन्हें मिल भी जाता कि गांधीजी और उनमें तीव्र मतभेद उभरा। इसी बात को लेकर गांधीजी ने आमरण उपवास शुरू किया। बाद में 'पूना करार' होकर आम्बेडकर 'आरक्षण' पर राजी हो गये।

1936 में आम्बेडकर ने स्वतंत्र मजदूर पार्टी स्थापित की। बंबई की विधान परिषद में वे पार्षद (कार्उंसिलर) बने। बाद में वह 1942 से 1946 तक वायसराय की कार्उंसिल के सदस्य बने। महाराष्ट्र से ही लोकनायक अणे भी सदस्य थे, परन्तु वह ब्राह्मण और सवर्णों के प्रतिनिधि माने गये। डा. आम्बेडकर केवल महाराष्ट्र की ही नहीं समूचे भारत की दलित जनता के प्रतिनिधि बनकर कानून मंत्री रहे। आपने गरीब ग्रामीण जनता और नागरिक बस्तियों में अछूतों की शिक्षा के लिए बंबई में 'सिद्धार्थ कालेज' स्थापित किया। एक और संस्था बनाई 'शेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन' (अनुसूचित जाति महासंघ)।

तीन बरस अविश्रांत परिश्रम करके डा. बाबा साहब आम्बेडकर ने भारत का संविधान बनाया। उन्होंने इस संविधान में 'अछूतपन' (जो गांधीजी हिंदू धर्म का कलंक मानते थे) कानून के द्वारा पूर्णत: नष्ट कर दिया। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आम्बेडकर भारत सरकार के कानून मंत्री बने। परंतु वहां भी उनका मतभेद हुआ तो उन्होंने मंत्रिपरिषद छोड़ दिया। उनकी पहली पत्नी का नाम रमाबाई था, जो 1935 में स्वर्गवासी हुईं। 1948 में आपने डा. लक्ष्मीबाई कुबेर नामक सारस्वत ब्राह्मण डाक्टरनी से विवाह किया।

14 अक्तूबर 1956 को आपने-अपने पांच लाख अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। उसी वर्ष छह दिसम्बर को डा. आम्बेडकर का देहांत हो गया। उनका शव दिल्ली से बम्बई ले जाया गया, जहां उनका अन्तिम संस्कार हुआ। डा. आम्बेडकर एक बड़े विद्वान और इतिहास, संस्कृत, समाजशास्त्र, नृवंशशास्त्र के विद्वान थे। उनके प्रकाशित ग्रंथों में 'भारत की जाति संस्था, उसकी उत्पत्ति और विकास (1916), भारत की जातियां (1924), पाकिस्तान के बारे में विचार (1940), शूद्र कौन थे (1946), बुद्ध और उनका धर्म (1957) आदि उनके विख्यात ग्रंथ अंग्रेजी में हैं।

डा. आम्बेडकर की इस जीवन रूपरेखा और कार्य-परिचय से पता चल जाएगा कि उन्होंने केवल महाराष्ट्र की ही ग्रामीण दलित जनता का नहीं बल्कि सारे भारत के ग्रामीणों के विकास के लिए पांच तरह से काम किया—

1. अपने स्वयं के जीवन में जो उन्हें सहना पड़ा वह और उनके जातिबंधुओं और अन्य अनुसूचित जाति तथा जनजाति के भाई-बहनों को न सहना पड़े। इसके लिए अस्पृश्यता विरोधी कानून बनाए, सत्याग्रह किए।
2. उनकी दृष्टि से पिछड़े वर्ग की समस्या का निदान शिक्षा से था। अतः उन्हें मुफ्त अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था का प्रावधान संविधान में रखा।
3. विशेषतः ग्रामीण और दलित स्त्रियों और बच्चों का शोषण रोकने के लिए बंधुआ मजदूर प्रथा का अंत करने के लिए अधिनियम बनाए।
4. ग्रामीण और दलित जनता के साथ-साथ कस्बे और नगरों में मजदूरी करने के लिए गांवों से खिंचकर आने वाले बेरोजगार लोगों का शोषण वहां के कारखानों के पूंजीपति, अलग-अलग राजनैतिक यूनियनें कर रही थीं। इसलिए स्वतंत्र मजदूर पक्ष बनाने की उन्होंने सोची।
5. एक अच्छे इतिहास और संस्कृत के अध्येता के नाते भारतीय जन-मानस में वर्ण-व्यवस्था के रूप में जो असमानता धर्म-परंपरा के नाम पर रूढ़िवादी लोगों ने भर दी थी, उसके लिए कानून बनाने से, पत्र-पत्रिकाएं निकालने से, ग्रंथ लिखने से ही काफी परिवर्तन नहीं हो रहा है, इस दृष्टि से धर्मान्तर करके नवबौद्ध बनने का मार्ग भी उन्होंने स्वयं आगे होकर सुझाया।

परंतु इस सारे अभियान के पीछे डा. आम्बेडकर की राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत, राष्ट्रभाषा के प्रति निष्ठा अडिग रही। वह अलग अछूतीस्तान नहीं बनाना चाहते थे। वह सांविधानिक तरीके से ही समाज परिवर्तन में विश्वास करते थे। हिंसा का मार्ग अपनाकर वह हत्या और आतंक की राजनीति में विश्वास नहीं करते थे। वह भारत विभाजन के कड़े विरोधी थे, परंतु उस विभाजन के ऐतिहासिक कारणों में ब्रिटिश कूटनीति के साथ-साथ हिंदू और मुस्लिम कट्टर नेताओं की संकीर्णता, साम्प्रदायिकता और अलगाववाद को दोष देते हैं, अपने 'पाकिस्तान' ग्रंथ में। वह भाषावार प्रतिरचना के विरोधी थे। यह बात साफ-साफ लिखते हैं की—संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन से भी गरीब जन-साधारण का भला नहीं होगा—"वह 'मराठी' राज्य न होकर 'मराठा' राज्य होगा।"

डा. बाबा साहब आम्बेडकर अन्याय के विरोध में प्रतिकार करने में, कानूनी लड़ाई लड़ने में विश्वास करते थे। 'हिंदू कोड बिल' वह ही संसद में लाए। उसमें स्त्रियों को समानाधिकार देने पर उनका जोर था। उसमें सफल न होने पर उन्होंने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। उनके साथ रहते हुए मराठी साहित्यकार और वकील शंकरराव खरात (जो मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में कुलपति भी रह चुके थे) ने उनके पत्र प्रकाशित किए हैं। धनंजय कीर ने उनकी जीवनी अंग्रेजी और मराठी में विस्तार से लिखी है। यह सारा साहित्य हिंदी में भी आना चाहिए। महाराष्ट्र सरकार उनकी समग्र रचनावली प्रकाशित कर रही है, कई खंडों में। वह मूलतः अंग्रेजी और मराठी में है। उसकी भी हिंदी होनी चाहिए।

डा. बाबासाहब आम्बेडकर यद्यपि महाराष्ट्र के ग्रामांचल से सामाजिक विषमता को मराठी समाज के निम्नतम आत्मज 'महार' जाति में रहकर भोग चुके थे, दुख को निकट से देखा था और महार शब्द से 'महार+राष्ट्र = महाराष्ट्र' शब्द की उत्पत्ति मानते थे। फिर भी अर्थशास्त्री के नाते उन्होंने सारे भारत के किसान-समाज की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया था। जहां-जहां जमींदारी प्रथा थी, स्थायी राज्य बंदोबस्त (परमानेंट सेटलमेंट) था या 'रैयतवारी' पद्धति थी, ग्राम की संरचना इस तरह से थी कि एक बड़ा समाज, जाति-प्रथा के रहते बराबर अन्याय और शोषण का शिकार बना रहता था। विशेषतः पिछड़े वर्ग, कारीगर, हस्तोद्योग और ग्रामोद्योग से जुड़े लोग, खेत में दिहाड़ी करने वाले मजदूर, सफाई-मजदूर, कुम्हार, ढोर मरने पर उनका चमड़ा उतारने वाले लोग, मातंग, रेगर और अन्य कई लोग और उन्हीं के साथ-साथ घुमन्तू जनजातियां, बंजारे, मृगया-जीवी मछेरे, अहेरी लोग सभी को तथाकथित उच्चवर्णीय समाज कैसे हेय समझता था और उठने नहीं देता था। रोटी-बंदी, बेटी-बंदी, व्यवसायबंदी, समुद्रयात्रा-बंदी, वेदोक्त बंदी, धर्मातरबंदी, स्पर्श-बंदी जैसी सावकर परिभाषित सात श्रृंखलाएं इन जन्म-जन्म के गुलामों के मन में और पैरों में बांध दी गई थीं। इस वर्ण विद्वेष को 'मूलतः कुठारा' कहकर जड़ से उखाड़ने के लिए आम्बेडकर कटिबद्ध थे।

तथाकथित अनुसूचित जातियों से नई सरकार और नई सरकार में अनेक केन्द्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री और सरकारों में मंत्री हैं, कई प्रशासनिक अधिकारी हैं, कई सांसद और विधायक हैं। फिर भी जैसा विकास होना चाहिए नहीं हो रहा है। कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टि अपनाई नहीं जा रही है। विवेकावाद को महत्व नहीं दिया जा रहा है। ये सब बातें डा. बाबा साहेब आम्बेडकर जल्दी से जल्दी कराना चाहते थे। उनके चित्र लगाना, जगह-जगह प्रतिमाएं निर्मित करना, या मरणोपरांत 'भारत-रत्न' देना, ये सब औपचारिक स्मृति-रक्षा उपाय अच्छे हैं। फिर भी काफी नहीं हैं। गांवों की बढ़ती आबादी, बेरोजगारी, गरीबी, बीमारी और आपराधिक तत्वों का उनमें रोग की तरह प्रवेश सबका एक साथ इलाज करने का मार्ग डा. आम्बेडकर ने सुझाया था। उनकी स्मृति को अक्षय बनाने के लिए नया समाज बनाना होगा, जिसमें जातपात, ऊंच-नीच, सवर्ण-अवर्ण, काले-गोरे, गरीब-अमीर का भेद मिटाकर सच्चा प्रजातंत्र इस देश में होगा। दो पार्टियां रहेंगी। सरकारी तामझाम कम होगा। नौकरशाही और पूंजीशाही में भ्रष्टाचार कम होगा और 'जो बोयेगा-जोतेगा, वह खायेगा' यह जीवन में नारे की तरह नहीं, परंतु वस्तुस्थिति की तरह प्रत्यक्ष और व्यावहारिक रूप से सामने आयेगा।

73, वल्लभ नगर,
इंदौर-452003

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें:—

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

ग्रामीण औद्योगीकरण
आवश्यकता एवं प्रासंगिकता

डा. निर्मल गांगुली

भारत जैसे महाद्वीपी आयाम वाले देश में जिसकी 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो और लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि और उससे सम्बन्धित सैक्टर पर निर्भर हो, निःसंदेह ग्रामीण औद्योगीकरण अत्यंत आवश्यक है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों में बिना सोचे-समझे प्रवसन की प्रवृत्ति को रोकना निहायत जरूरी है। यह इसलिए भी अनिवार्य है कि कृषि पर श्रम के केन्द्रीयकरण को रोकना है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि पर अधिक भीड़भाड़ तथा कृषि उत्पादकता में कमी आई है। समस्या और अधिक कटु बनती जा रही है क्योंकि हाल ही के वर्षों में रोजगार के विकास दर में विशेषकर निजी निर्माण सैक्टर में कमी आई है। अतः इस बात की जरूरत बढ़ जाती है कि ग्रामीण जनसंख्या को उनके निवास के समीप रोजगार प्रदान करने के लिए एक व्यापक पैकेज बनाया जाए। ऐसी रणनीति एक प्रभावी एवं समन्वित ग्रामीण औद्योगीकरण के योजना से ही सफल हो सकती है। ग्रामीण औद्योगीकरण के ऐसे कार्यक्रम को विभिन्न क्षेत्रों की वांछित आवश्यकता एवं उपलब्ध स्थानीय स्रोतों को भी ध्यान में रखना होगा। इसके लिए यह भी जरूरी है कि क्षेत्रीय योजना जैसे क्षेत्र योजना एवं स्थानीय योजना बनाते समय सव्यवस्थित रणनीति अपनाई जाए।

ग्रामीण गरीबों तक आमदनी की पहुंच बढ़ाने की आवश्यकता

ग्रामीण औद्योगीकरण की एक प्रभावी कार्यक्रम इसलिए भी अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है क्योंकि जब तक नियमित आमदनी ग्रामीण गरीबों के हाथों तक नहीं पहुंचती, औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक मांग नहीं होगी, परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन दीर्घकालीन आधार पर नहीं बढ़ सकेगा।

गतिशील ग्रामीण संस्कृति

भारतीय स्थिति में जहां पर अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है वहां पर ग्रामीण औद्योगीकरण आर्थिक प्रगति की दर को बढ़ाने में एक प्रभावशाली कारक साबित हो सकता है। ग्रामीण औद्योगीकरण की प्रक्रिया ज्ञान को विस्तृत करने में, आधुनिकीकरण की दिशा को बढ़ावा देने में तथा तकनीकी कुशलता को बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। ग्रामीण औद्योगीकरण लोगों की विचारधारा में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में भी एक अहम् भूमिका निभाता है। ग्रामीण औद्योगीकरण की आवश्यकता इस बात से भी जाहिर होती है कि सरकार ने योजना का विकेन्द्रीकरण और आर्थिक विकास में छितराव लाने के उद्देश्यों के ऊपर विशेष जोर डाला है। इस चीज की अनुभूति की जा रही है कि जब तक विकास की प्रेरणा देश के कोने-कोने में न पहुंचाई जाए और फैसले लेने की प्रक्रिया को जिलों और खण्ड के स्तर तक न लाया जाए तब तक योजना आम आदमी की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाएगी। यह और भी अधिक प्रासंगिक है क्योंकि भारत जैसे बड़े देश में जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विविधता है आर्थिक समस्याओं का निराकरण करने के लिए कोई एकमात्र उपाय नहीं हो सकता है जो सभी स्थिति में सफल सिद्ध हो। इसलिए क्षेत्रीय विस्तार और विकास पर अधिक ध्यान देना है।

ग्रामीण औद्योगीकरण इसलिए भी जरूरी है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि के कारण खेती का क्रमशः छोटे-छोटे भागों में विभाजन हुआ है। इस अवांछित प्रक्रिया को कारगर रूप में रोकने के लिए एक ग्रामीण औद्योगीकरण पैकेज की आवश्यकता है।

पिछड़ापन और सामाजिक तनाव

दूसरा पहलू जो विस्मरणीय नहीं रह सकता वह यह है कि पिछड़े इलाकों में सामाजिक तनाव है जो कि अधिक से अधिक आर्थिक उन्नति चाहता है। कभी-कभी इस तरह का तनाव पृथकतावाद के नारे को भी जन्म देता है जो कि हमारे प्रजातंत्र के अनुरूप नहीं है। इन अशोभनीय प्रवृत्तियों को शुरू में ही हमेशा के लिए रोकने के लिए एक सफल ग्रामीण औद्योगीकरण योजना की जरूरत है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के अलावा भी रोजगार के अतिरिक्त साधन यथेष्ठ मात्रा में जुटाए जा सकें।

अतिरिक्त साधन

विज्ञान, टेक्नोलाजी और कृषि की उन्नति के साथ-साथ ग्रामीण धनाढ्यों के पास अतिरिक्त साधन उपलब्ध हो पाए हैं और वे इन साधनों के द्वारा छोटी औद्योगिक इकाइयों को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित कर सकते हैं। इस तरह की संभावनाएं ग्रामीण औद्योगीकरण की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।

जुलाई 1980 की औद्योगिक नीति का वक्तव्य

ग्रामीण औद्योगीकरण के महत्व को नजर में रखते हुए व कृषि पर आधारित उद्योगों को देखते हुए जुलाई, 1980 की औद्योगिक नीति भी इस बात पर जोर देती है। नीति वक्तव्य का एक मुख्य उद्देश्य कृषि पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना है। इसलिए कृषि पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने पर जोर देने की आवश्यकता है।

कृषि पर आधारित उद्योग

कृषि पर आधारित व ग्रामीण उद्योगों का उद्देश्य कृषि में एक खास भूमिका को निभाना है। कृषि आधारित उद्योग, कृषि व उद्योगों के समन्वित विकास तथा उनमें गतिशीलता लाने में अहम् भूमिका निभाते हैं। कृषि पर आधारित उद्योग, वे उद्योग हैं जिनमें बड़ी मात्रा में कृषि उत्पाद कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होते हैं, जैसे चावल की मिल, चक्कियां, कपड़ा, चीनी, चाय, काफी, कागज, रबड़, सिगरेट आदि।

विकासशील देशों में औद्योगीकरण में तेजी लाने के लिए ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित उद्योगों की स्थापना को विकास नीति का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए, इनके आधार पर अन्य उद्योगों का विकास किया जा सकता है।

कृषि पद्धति को आधुनिक बनाने के लिए नई टेक्नोलाजी के इस्तेमाल, उर्वरक तथा कीटनाशक दवाओं के प्रयोग और कुशल प्रबंध के जरिए कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की काफी संभावनाएं हैं। इस प्रकार कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए औद्योगिक समर्थन मिलना अनिवार्य है। इससे कृषि मजदूरों की कार्यकुशलता में परिवर्तन आएगा और अतिरिक्त श्रमिकों को उद्योगों में रोजगार मिलने लगेगा।

कृषि आधारित तथा ग्रामीण उद्योगों का विकास करने का एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि इससे योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण होता है और स्थानीय साधनों और स्थानीय लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर योजनाएं बनाई जाती हैं। इस प्रकार इससे स्थानीय उद्यमियों को प्रेरणा मिलती है, रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, गांवों से शहरों में पलायन पर नियंत्रण लगता है तथा उत्पादन का आधार विस्तृत होने से आर्थिक सत्ता कुछ हाथों में सीमित न होने पर रोक लगती है।

अनुभववादी प्रमाण

लेखक द्वारा किए गए एक विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि औद्योगिक उत्पादन, कृषि आधारित उद्योगों का उत्पादन तथा गैर-खाद्य कृषि जिंसों के उत्पादन के बीच गहरा संबंध है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 8 प्रतिशत वार्षिक औद्योगिक विकास दर का लक्ष्य पूरा करने के लिए देश में कृषि आधारित उद्योगों की वृद्धि दर 6.8 प्रतिशत वार्षिक बनाए रखनी होगी, जिसके लिए गैर-खाद्य कृषि वस्तुओं के उत्पादन को 13.9 प्रतिशत वार्षिक दर पर बढ़ाना पड़ेगा।

ग्रामीण औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के मुख्य फायदे

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित उद्योगों के आर्थिक तथा सामाजिक नीति के दृष्टिकोण से बहुत-से फायदे हैं। उनमें से मुख्य लाभ इस प्रकार हैं—

1. ये उद्योग आसानी से लगाए जा सकते हैं और ग्रामीण इलाकों में लोग कम पूंजी लगाकर अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।
2. इन उद्योगों में कृषि से मिलने वाले कच्चे माल का आसानी से कारगर उपयोग हो सकता है। इसके द्वारा कृषि से संबंधित कच्चे माल की खपत ज्यादा होने के कारण कृषक को उत्पादकता और उपज बढ़ाने के लिए काफी प्रोत्साहन मिलता है।
3. गांव में औद्योगिक वातावरण पैदा करके ये उद्योग आधुनिकता की चेतना और प्रेरणा लाते हैं तथा एक नई तथा समृद्ध ग्रामीण व्यवस्था के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं।
4. कुछ ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित उद्योग डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों तथा फलों आदि का अधिक निर्यात बढ़ाने में योगदान कर सकते हैं।
5. ग्रामीण कृषि पर आधारित उद्योग सहकारी आधार पर लगाए जा सकते हैं जिससे विकास प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी बढ़ेगी।
6. इन उद्योगों से ग्रामीण क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा मिलता है और आर्थिक सत्ता केन्द्रित नहीं हो पाती।

जरूरत—एक समुचित नीति की

ग्रामीण विकास में ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित उद्योगों की इस उपयोगिता को मद्देनजर रखते हुए इन उद्योगों के विकास के लिये कारगर तथा समुचित नीति बनाई जानी चाहिए। इस नीति में कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना निहायत जरूरी है—

(क) ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास और विस्तार को देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास की व्यापक नीति का आधार माना जाना चाहिए।

(ख) इन उद्योगों से संबंधित नए उद्योग भी लगाए जाने चाहिए ताकि इनमें तैयार गौण उत्पादों का उपयोग हो सके।

(ग) इन उद्योगों में प्रबंध तथा विपणन के नए आयाम अपनाए जाने चाहिए।

हमारे देश में जिन कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास की काफी संभावनाएं हैं उनमें प्रमुख हैं—

(1) खाद्य तैयार करने के उद्योग जैसे—फल, रस, जैम, अवलेह, मलाई उतरा हुआ दूध, गाढ़ा दूध, सूखे फल आदि।
(2) चावल की मिल।
(3) छिलके से तेल निकालना।
(4) चीनी।
(5) कपास का कपड़ा।
(6) कागज।
(7) ऊनी वस्त्र।
(8) कृषि औजार।
(9) नारियल की जटा।
(10) अन्य ग्रामीण उद्योग।

उपसंहार

प्रस्तुत लेख से यह सिद्ध होता है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, ग्रामीण औद्योगीकरण अत्यंत आवश्यक है। ग्रामीण औद्योगीकरण के द्वारा कृषि तथा औद्योगिक प्रगति का समन्वय भी संभव है क्योंकि कृषि तथा उद्योग दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतः यह कहना जरूरी होगा कि कृषि तथा उद्योगों के समन्वित विकास तथा भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन तथा समृद्धता लाने के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण को एक सशक्त कार्यक्रम बनाने की आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकता के बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि इस जरूरत के प्रति नई सरकार भी वचनबद्ध है। यह इस बात से जाहिर होता है कि छोटे उद्योग, कृषि पर आधारित तथा ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उद्योग मंत्रालय में एक विभाग की शुरुआत हुई है। निःसंदेह इस अनुकूल परिस्थिति में ग्रामीण औद्योगीकरण के द्वारा ग्रामीण भारत को और भी खुशहाल, समृद्ध तथा जीवन्त बनाए रखने के लिए एक कारगर तथा सशक्त प्रयास किया जा सकता है।

अनुवाद : महेन्द्र सिंह,

ए 7, जितार नगर,

पोस्ट आफिस कृष्णा नगर, दिल्ली-51

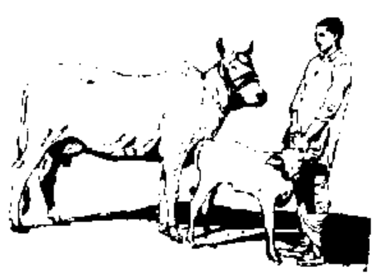

जल संसाधन प्रबन्ध–चुनौतियां

डा. अशोक कुमार शर्मा

मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण पाने के अथक प्रयत्न किये हैं व उसे कई क्षेत्रों में सफलता भी मिली है पर एक क्षेत्र जिस पर वह नियंत्रण नहीं पा सका, वह है अकाल/बाढ़। वैसे कृत्रिम वर्षा के द्वारा अभाव स्थिति को रोकने के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं, लेकिन जब तक इन प्रयोगों में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती, तब तक मानव को अकाल का सामना करना ही पड़ेगा। इस समस्या का सभी स्तरों पर सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं तथा आम आदमी को मिलकर मुकाबला करना आवश्यक है।

मानव की अनेक समस्याएं पानी के इर्द-गिर्द केन्द्रित लगती हैं। सबसे पहले हमें यही चिन्ता होती है कि क्या मानसून हमारी फसलों के लिए अच्छा सिद्ध होगा या नहीं। मानसून की प्रतीक्षा करते-करते हमेशा कहीं न कहीं सूखा पड़ जाता है। उसके बाद आती है बाढ़, कभी बहुत कम, कभी बहुत ज्यादा और हमेशा गलत जगह पर। इसी तरह जब हम सिंचाई व्यवस्था का प्रबन्ध करने में समर्थ होते हैं, तो हमारे सामने पानी के जमा होने, खारापन और ऐसी कई समस्याएं पैदा होती हैं।

हम अभी जल संसाधन का अपनी क्षमता के अनुरूप उपयोग नहीं कर पाये हैं। पानी के उपयोग के लिए अभी तक कोई समग्र राष्ट्रीय नीति का निर्धारण नहीं किया गया है। हमारे देश में प्राकृतिक अभावों के अलावा बहुत से राज्यों में वहां से होकर बहने वाली नदियों और उनके बंटवारे को लेकर गम्भीर समस्याएं हैं। अनेक राज्यों में जहां सिंचाई परियोजनाएं चल रही हैं, काफी पानी बेकार चला जाता है। यदि हम अभी से समग्र दृष्टि से निर्णय नहीं कर पाये तो आने वाले 10-15 वर्षों में पानी न होने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। जल संसाधन प्रबन्ध के सम्बन्ध में समग्र योजना बनाते समय जंगलों, पहाड़ों एवं पर्यावरण को विशेष महत्व देना होगा, जंगलों की कटाई अथवा क्षेत्र के प्राकृतिक भूगोल में परिवर्तन के कारण उस क्षेत्र विशेष का मौसम प्रभावित होता है। उत्तरी भारत में जंगलों की कटाई से उत्तरी शीत हवाएं बम्बई तक पहुंचने लग गई हैं। उपलब्ध पानी के अनुरूप ही हमें अपनी कृषि में परिवर्तन करना होगा। मौसम के अनुरूप उपलब्ध पानी का हर चरण में उपयोग करना होगा। आने वाले 10-15 वर्षों में जल के सम्बन्ध में विकट स्थिति से बचने के लिए पानी का उपयोग सर्वोत्तम उत्पादकता के लिए करने की नीति बनानी होगी। हमारे देश में पानी के सर्वोत्तम उपयोग के लिए राज्य की सीमा तथा अन्य सीमाओं के कृत्रिम अवरोधों को दूर करते हुए पूरे देश के हित में राष्ट्रीय जल संसाधन नीति के निर्माण की आवश्यकता है।

जल विकास-परिप्रेक्ष्य

प्रगतिशील समाज और कल्याणकारी राज्य में शासक का यह कर्तव्य है कि वह जनता के लिए अन्न, जल और निवास की व्यवस्था करे। जल की कमी के कारण समाजवादी ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति का लोप हो रहा है, हमारे देश में पर्याप्त मात्रा में जल होते हुए उचित योजनाओं के क्रियान्वयन के अभाव में उसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। जल भण्डारण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण उपलब्ध पानी का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। जल संसाधन के विकास, भण्डारण और वितरण हेतु वैज्ञानिक इंजीनियरों और आर्थिक नियोजकों में सामंजस्य स्थापित किया जाये। जल संसाधनों के विकास की जानकारी हेतु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के साथ सभी वर्तमान संगठनों के मध्य जानकारी का आदान-प्रदान होना चाहिए। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जल-संसाधनों पर मनुष्य व पशुओं के दबाव के आकलन की समयवार व्यवस्था की जानी चाहिए।

जल संसाधन प्रबंध के सम्बंध में एक नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह आवश्यक नहीं है कि जल संसाधनों में कमी होने से हम अपने विकास कार्यों पर रोक लगा दें। बल्कि

हमें जल के उपयोग को प्राथमिकता वार नियंत्रित करते हुए समविभाजन और विकास करना होगा।

सिंचाई आयोग (1972) द्वारा निर्धारित जल प्राथमिकता इस प्रकार है:

(1) पीने का पानी,
(2) पानी की छोटी-छोटी जरूरतों की दृष्टि से औद्योगिक उपयोग,
(3) शेष उपलब्ध जल फसलों, घास, वृक्षों, पशुपालन के लिए उपयोग किया जाये,
(4) फसलों की वह किस्में जिनमें पानी कम मात्रा में इस्तेमाल होता है,
(5) बूंद-बूंद सिंचाई एवं छिड़काव जैसी सिंचाई करने की प्रणालियों का उपयोग,
(6) असिंचित कृषि प्रणाली,
(7) सतही जल और भूजल का साथ-साथ उपयोग।

परम्परागत जल संसाधनों द्वारा जल प्रबन्ध का कार्य अत्यन्त खर्चीला परन्तु महत्वपूर्ण है, जिसका समस्त भार राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार को वहन करना चाहिए। कुछ तालाब, कृत्रिम नाले, बावड़ी और झीलें प्राचीन जल आपूर्ति के साधन रहे हैं। इन परम्परागत साधनों के जल संरक्षण तथा उनके रख-रखाव में गत चार दशकों में लापरवाही की है। परम्परागत साधनों का विद्युतीकरण अति आवश्यक है, जिससे किसानों को अनावश्यक श्रम से मुक्ति मिलेगी और कार्यक्षमता भी अधिक होगी।

कृषि जल एवं जल प्रबन्ध

जल की पर्याप्त आपूर्ति न केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि अनिश्चित मौसम की दशाओं में उत्पादन को स्थिर रखने के लिए भी महत्वपूर्ण है। वर्षा, भूजल तथा जल संग्रहण से कृषि भूमि की सिंचाई मुख्य रूप से होती है। सिंचाई के लिए उपलब्ध जल के उत्तम प्रबन्ध के जरिये पैदावार बढ़ाई जा सकती है। कृषि कुओं से सिंचाई कार्य को उद्योगस्वरूप माना जाये। बांधों, मुख्य नहरों, वितरिकाओं और खेतों में रिसाव व वाष्पन से करीब 40 प्रतिशत पानी नष्ट हो जाता है। अंतिम छोर तक जल पहुंचाने की कारगर व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें मुख्य बाधाएं धोरों, नहरों का अपूर्ण रख-रखाव और सफाई की कमी, कृषकों की लापरवाही, ड्रेनेज प्रणाली का अभाव, सिंचित भूमि का असमतल होना, जल रिसाव है। राजस्थान जैसे प्रदेश में सूखी खेती के द्वारा ही कम जल उपलब्ध होने पर आर्थिक विकास संभव है। किसानों को मौजूदा सिंचाई सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहन हेतु विस्तार कार्यक्रम भी अपर्याप्त प्रतीत होता है। सातवीं योजना में वृहद्, मध्यम व लघु सिंचाई कार्य प्रगति के आंकड़ों से यह विदित होता है कि सिंचाई परियोजनाओं के मामले में सिंचाई क्षमता के निर्माण और उपयोग के बीच दूरी का मुख्य कारण किसान की अपेक्षित एवं वास्तविक ज्ञान संपन्नता का अभाव है। लघु सिंचाई के मामले में अपर्याप्त विद्युत आपूर्ति सृजित क्षमता के अल्प उपयोग का मुख्य कारण है। भू-जल के अनुमानों को देखते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम और आन्ध्र प्रदेश के निर्धारित जिलों में प्रति वर्ष 6 लाख कम गहरे नल कूप पतिस्थापित करने का जो प्रस्ताव है, उसकी व्यावहारिक परिणति अपरिहार्य है। बैंकों, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, भूमि विकास बैंकों आदि के माध्यम से लघु सिंचाई विकास पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। वृहद और मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा अतिरिक्त सिंचाई क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए।

पेय जल प्रबन्ध

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1981 से 1991 तक की अवधि जल प्रदाय व सेनीटेशन दशक वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। इस दशक के लक्ष्य के रूप में यह माना गया है कि सभी नगरों एवं ग्रामों को पेयजल से लाभान्वित कर दिया जायेगा। इस परिप्रेक्ष्य में विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण से पेयजल एवं सेनीटेशन योजनाओं की क्रियान्वित के लिए वित्तीय सहायता ली गई है। वर्षा के पानी को भण्डारण करने की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में पेयजल समस्या उठ खड़ी होती है। निरन्तर अकाल की स्थिति से भूमिगत जल-स्तर भी काफी निम्न स्तर पर पहुंच जाता है। अतः भूमिगत जल-स्तर को संग्रह करने के छोटे-छोटे एनिकट, टांके, बांध व तालाब बनाकर इस समस्या को हल किया जा सकता है। विकास के साथ पेयजल की गुणवत्ता के विकास के प्रयास भी आवश्यक हैं। विभिन्न क्षेत्रों में पेयजल खनिज एवं जैविक अशुद्धता से ग्रस्त है अतः इनके निराकरण एवं अन्वेषण के लिए प्राथमिकता के आधार पर कार्य आवश्यक है।

सन् 1986 में भारत के प्रधानमंत्री द्वारा प्रोद्यौगिकी मिशन स्थापित करने की घोषणा की गई है। इस मिशन के तहत ग्रामीण पेयजल कार्यक्रमों को गतिशील तथा कम खर्चीला व समस्त ग्रामों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना है। खारे पानी को पीने योग्य बनाने के लिए संयंत्र योजनाएं प्रारंभ की जानी चाहिए। इलेक्ट्रो-डायालिसिस विधि पर आधारित संयंत्रों को ग्रामीण जल प्रदाय प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाये। समुद्र द्वारा खारा जल लाकर उसे पीने योग्य बनाया जा सकता है।

बीस-सूत्री कार्यक्रम में राज्यों के समस्त ग्रामों में सुरक्षित पीने योग्य पानी की व्यवस्था करना एक सूत्र है। इस कार्यक्रम के तहत भारत सरकार द्वारा त्वरित योजना कार्यक्रम के तहत अधिक राशि उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

गांव में पेयजल व्यवस्था के लाभ उठाती महिलाएं

पर्यावरण व जल प्रबन्ध

पर्यावरण को नष्ट होने से बचाकर वर्षा का औसत बढ़ाया जा सकता है। पेड़ बाढ़ के पानी की गति कम करते हैं, मिट्टी के क्षरण को रोकते हैं एवं वर्षा को आमंत्रित करते हैं। जल संसाधन पर दबाव का कारण बढ़ती हुई जनसंख्या घटते हुए जल-स्रोत के अलावा पर्यावरण का असंतुलित होना भी है, वृक्ष पशु-पक्षियों को आहार, भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के अलावा पर्यावरण को संतुलित रखते हैं व मानसूनी वर्षा को आमंत्रित करते हैं।

भू-जल का अनुपात बनाये रखने के लिए नदियों और तालाबों के पास पेड़ लगाना और तालाबों में पानी इकट्ठा करना बहुत जरूरी है। जलवायु की प्रकृति के विपरीत विजातीय पौधे नहीं लगाये जायें, राजस्थान जैसे शुष्क राज्यों में कैर, कीकर, खेजडी, बोरटी, नीम, आक के पेड़ लगाये जा सकते हैं, जबकि अधिक पानी वाले क्षेत्रों में अधिक वाष्पन के लिए इजराइल की बबूल और सफेदा के वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

इस प्रकार जल संसाधनों के प्रबन्ध और विकास में जल-स्रोतों का समविभाजन, जल का नियंत्रित उपयोग, अनावृष्टि और भूमि-क्षरण तथा बाढ़ को रोकने के लिए वनों का विकास, नदी घाटी योजनाओं को प्रोत्साहन, नदियों के अनियन्त्रित बहाव की बांधों के निर्माण से रोकथाम, पर्यावरण विकास सिंचाई के लिए सतही जल तथा भूमिगत जल का संयुक्त प्रयोग विकसित सिंचाई योजनाओं का अधिकाधिक प्रयोग आदि एक अहम् भूमिका रखते हैं। खारे पानी के उपयोग के लिए विशेष अनुसंधान किये जाने चाहिए। उससे नमक, जीव-जन्तु, शैवाल, चरागाह विकास तथा फल-बागवानी आदि कार्यों के लिए वृहत पैमाने पर अनुसंधान की व्यवस्था की जानी चाहिए। आर्टीमियां के उत्पादन को कुटीर उद्योगों के रूप में विकसित किया जाना चाहिए क्योंकि यह मछली पालन के लिए अति उत्तम पौष्टिक आहार है। इंदिरा गांधी नहर परियोजना का प्राथमिकता के आधार पर कार्य व इसी गंगा और यमुना नदी के जल को पाइप लाइनों द्वारा सुरक्षित जल भण्डार बनाने के लिए योजना बनाई जा सकती है। उपलब्ध जल का पुन: उपयोग अथवा विवेकी उपयोग सीमित जल-संसाधनों के विकास व प्रबन्ध में सहयोगी रहेंगे।

प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

पेयजल ग्रामीण सुधार की बुनियादी आवश्यकता

डा. राजेश्वरी त्रिपाठी

पेयजल जीवन की एक आधारभूत आवश्यकता है लेकिन उत्तर प्रदेश के अनेक गांवों में पेयजल एक समस्या बनी हुई है। इस दशक को अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति तथा स्वच्छता दशक के रूप में मनाया जा रहा है।

देश के अन्य राज्यों के साथ ही उत्तर प्रदेश में भी 1950-51 में प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गई। राज्य के सामने सबसे पहला सवाल था, कृषि उत्पादन बढ़ाने का—इसके लिये सिंचाई के साधनों के विस्तार और कृषि अन्य कार्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई, इसके बाद की योजनाओं में कृषि के साथ ही ऊर्जा उद्योगों तथा कई अन्य क्षेत्रों को भी प्राथमिकता प्रदान की गई।

राज्य में नियोजित विकास की चार पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये तमाम प्रयासों के बाद भी पेयजल की समस्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, किन्तु इस बीच राज्य में विकास का प्रारम्भिक आधारभूत ढांचा तैयार कर लिया गया है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के बाद से राज्य में आर्थिक विकास की दर तेज देखी जा सकती है। उत्तर प्रदेश में इस पेयजल व्यवस्था को विशेष प्राथमिकता दी जा रही है। ग्रामीण अंचलों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के परिवारों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ग्रामीण हरिजन पेयजल योजना ग्राम्य विकास विभाग द्वारा प्रदेश के मैदानी तथा पर्वतीय क्षेत्रों में संचालित की जा रही है। इनमें उन समस्या ग्रस्त गांवों को लिया गया है जिन्हें 1979-82 के सर्वे में इंगित किया गया था। इस कार्यक्रम में समय-समय पर पुनः सर्वेक्षण कर अभावग्रस्त गांवों का चयन करके स्वच्छ पेयजल सुविधा देने का भी प्रावधान है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भौगोलिक एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप पेयजल साधनों की व्यवस्था करायी जाती है और आवश्यकतानुसार मैदानी क्षेत्रों में कूप तथा हैण्ड पम्प और पर्वतीय क्षेत्रों में डिग्गियां निर्मित करायी जाती हैं। कुओं के पेयजल को स्वच्छ तथा कीटाणु रहित बनाये रखने के लिए उन्हें आदर्श विधि से निर्मित कराया जाता है तथा हैण्ड पम्पों के सुविधाजनक संचालन की दृष्टि से इण्डिया मार्क II कोटि के हैण्ड पम्प लगाये जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में डिग्गियों के निर्माण में भी जल सुरक्षा के उपाय पूर्णतया अपनाये जाते हैं। हैण्ड पम्पों का कार्य वर्तमान समय में जल निगम के माध्यम से तथा कूप और डिग्गियों का निर्माण संबंधित विकास खण्ड द्वारा सम्पन्न कराया जाता रहा है।

इस योजना के प्रारम्भ से अर्थात वर्ष 1971-72 तथा 1985-86 तक 3,77,733 लाख रुपये के व्यय से 12,724 हैण्ड पम्प तथा 4460 डिग्गियों का निर्माण कराया जा चुका है।

वर्ष 1986-87 में 712 कूपों, 250 डिग्गियों, 2016 हैण्ड पम्पों के निर्धारित लक्ष्य के विपरीत 803 कूप, 2820 हैण्ड पम्प और 227 डिग्गियों का निर्माण किया जा चुका है और इस पर 4,38,906 लाख रुपये व्यय हुये। वर्ष 1987-88 में 825 कुओं के निर्माण हुआ 2741 हैण्ड पम्प लगाये गये तथा 250 डिग्गियों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया था।

जल आपूर्ति व स्वच्छता पर व्यय

	मद	राज्य सैक्टर	जिला सैक्टर	योग	पर्वतीय क्षेत्र ब्याज	मैदानी क्षेत्र ब्याज
(क)	जल निगम	3038	2034	5072	3100	8172
(ख)	ग्राम्य विकास विभाग		403	403	75	878
	उपयोग	3038	2437	5475	3175	8650

पेयजल व्यवस्था की आपूर्ति के लिये गांवों के विकास को प्राथमिकता देते हुये स्थानीय स्तर पर सरकार द्वारा तीव्र गति से प्रगति की गई है।

स्थानीय स्तर पर पेयजल योजना में भागीदारी

वर्ष	निर्धारित लक्ष्य	उपलब्धि	प्रतिशत
1982-83	1,650	5,619	3,40.5
1983-84	8,000	11,654	1,44.5
1984-85	8,000	8,188	53.8
1985-86	3,854	8,829	2,29.0
1986-87	5,515	11,997	2,27.5

नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 1988-89 में 11 करोड़ रुपये का प्रावधान था। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल सुविधा में पंचायतों की भागेदारी सुनिश्चित कराने के लिये जल निगम द्वारा लगाये गये हैण्ड पम्प के रख-रखाव की जिम्मेदारी गांव की सभाओं को सौंपने का निर्णय लिया गया है। अब तक के प्रदेश के 48 मैदानी क्षेत्र, एक पर्वतीय जनपद नैनीताल में जल निगम द्वारा लगाये गये लगभग 72 हजार हैण्ड पम्पों में 50 हजार हैण्ड पम्प ग्राम सभाओं को हस्तान्तरित किये जा चुके हैं। इनके मरम्मत की व्यवस्था भी ग्राम द्वारा की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिये जितनी भी योजनाएं चलायी जा रही हैं उनमें पेयजल योजना को सबसे अधिक महत्व देना चाहिये तथा तभी ग्रामीण क्षेत्रों का विकास सम्भव हो सकेगा।

ग्रामीण सुधार की बुनियादी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये हर ग्राम तक पीने के पानी का पहुंचना नितान्त आवश्यक है। इस हेतु सरकार के प्रयास सराहनीय हैं पर आवश्यकता विकास योजनाओं के उचित कार्यान्वयन की है।

संगठक महाविद्यालय, (उ. प्र.)

पुस्तक समीक्षा

राष्ट्रीय चेतना को जिन कवियों ने समय-समय पर वाणी दी है, उनमें वरिष्ठ कवि श्री कन्हैया लाल 'मत्त' का नाम सुपरिचित है। पिछली आधी शताब्दी उनकी राष्ट्रीय कविताओं की साक्षी रही है। मत्तजी की रचनाशीलता भी इस आधी शताब्दी के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिदृश्यों को शब्द देती रही है। इस आधी शताब्दी का एक चौथाई हिस्सा ऐसा भी रहा है जब हमारा देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और कुंठा, निराशा और घुटन से पूरा जन-मानस त्रस्त था। इस काल के बाद देश को मिली स्वतंत्रता और इस आधी शताब्दी का तीन चौथाई हिस्सा स्वाधीनता की मुक्त हवा में बीता है। आज हमारा देश निर्माण और प्रगति की सीढ़ियां चढ़ रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नये क्षितिज छुए जा रहे हैं। किन्तु जहां हम प्रगति की ऊंचाई चढ़ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर देश विघटनकारी शक्तियों की दुरभिसंधियों का शिकार भी हो रहा है। ऐसे में आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है—राष्ट्रीय चेतना की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा। स्वतंत्रता-पूर्व के राष्ट्रीय संदर्भ को पुनर्जागृत करने वाले साहित्य की प्रासंगिकता आज सर्वाधिक प्रबल हो उठी है।

'अर्ध्यपाद्य' में मत्तजी ने पिछली आधी शताब्दी के राष्ट्रीय संदर्भों को स्वर दिया है। पराधीनता की कुंठा, क्षोभ, वेदना, निराशा के साथ-साथ एक नये राष्ट्र के निर्माण, विकास प्रगति, सांस्कृतिक समृद्धि और उसके बाद हुए युद्ध, विघटन और देश की अखंडता के सामने आने वाली चुनौतियां और उसके प्रति जन-जागरण को इस संकलन की पैंतीस कविताओं में अलग-अलग मानसिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक गौरव की गरिमापूर्ण अभिव्यक्ति के अतिरिक्त शांति तथा एकता की पक्षधर शक्तियों को सजग करने के स्वर इस संकलन की अनेक कविताओं में बहुत प्रखरता के साथ उभरे हैं। एक कविता का अंश इस प्रकार है—

मानवता की ज्योति जगाई हमने ही पहले,
दानवता से लड़े, निरंतर, कभी नहीं दहले।
सत्य, अहिंसा के हामी हम, निर्बल के बल हैं,
खुले पृष्ठ-सा जीवन जीते, कोई कुछ कह ले।
निर्भय हुआ वही, जिसने भी हमें पुकारा है,
यह जन-तंत्र हमारा, यह गण-तंत्र हमारा है।

आशा है, यह संकलन पाठकों को रुचिकर लगेगा और राष्ट्र की खोई अस्मिता की पुनर्प्राप्ति की चेतना जगायेगा।

अर्ध्य-पाद्य; लेखक : कन्हैया लाल 'मत्त'; प्रकाशक : काकली प्रकाशन, के. बी. 46, कवि नगर, गाजियाबाद; मूल्य : पच्चीस रुपये; पृष्ठ संख्या : 76 (सजिल्द)

समीक्षा : देवेन्द्र मोहन
1261, गुलाबी बाग, दिल्ली-110007

समस्त अंश पूंजी समाप्त हो गई तथा कुछ को इतना नुकसान हुआ कि उनके जमा भी खाये जा चुके थे। निम्न ब्याज दर, ऊंची सेवा लागत तथा व्यवसाय का कम होना आदि इनके नुकसान होने के कारण हैं। फिर भी इनको प्रभावी बनाने हेतु कृषि साख समीक्षा समिति, 1987 ने इन्हें व्यापारिक बैंकों के साथ मिलाने की सिफारिश की है। इनके विलय से कार्यप्रणाली में सुधार होगा।

(5) ग्रामीण साख से लाभान्वित इकाइयों के प्रारम्भिक चयन में सावधानी बरती जानी चाहिए जिससे कि गलत इकाइयों का चयन नहीं हो। चयन में किसी प्रकार की राजनीति का प्रवेश नहीं होना चाहिए।

(6) ग्रामीण साख प्रदान करने वाली संस्थाओं को साख पूर्ति के लक्ष्यों को पूरा करके अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर लेनी चाहिए। इन संस्थाओं का कार्य केवल सही इकाइयों को पर्याप्त साख सही समय पर देना ही नहीं है बल्कि साख का सही उपयोग संबंधी कार्य भी महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्रभावी पर्यवेक्षण करना आवश्यक है जिससे कि साख के दुरुपयोग को रोका जा सके। इसका दोहरा लाभ होगा। एक ओर ग्रामीण साख का उत्पादक कार्यों में उपयोग होने से स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण होकर रोजगार के अवसरों का सृजन होगा तथा दूसरी ओर उधारकर्ताओं की ऋण की बकाया राशि में निरंतर वृद्धि नहीं होगी और संस्थाओं द्वारा और अधिक ऋण देने की क्षमता में वृद्धि होगी।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के वित्त मंत्री प्रो. मधुदण्डवते ने अपने बजट में 49 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण विकास को आवंटित किया है तथा 10,000 रुपये की राशि तक के ऋणों को माफ करने की घोषणा की है। सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में रोजगार गारण्टी योजना चालू करने का भी प्रावधान किया गया है। इन समस्त प्रावधानों से स्पष्ट है कि सरकार ग्रामीण क्षेत्र का विकास तेजी से करने हेतु कटिबद्ध है लेकिन इन सबके लिए अपेक्षित जनसहयोग, मेहनत एवं त्याग की आवश्यकता है। यदि सभी ओर से एक जुट होकर कार्य किया जाता है तो हम एक नये भारत का निर्माण कर सकते हैं जिसमें प्रत्येक को रोजी-रोटी आसानी से सुलभ की जा सके।

1347 जयपथ, बरकत नगर,
जयपुर-302015 (राजस्थान)

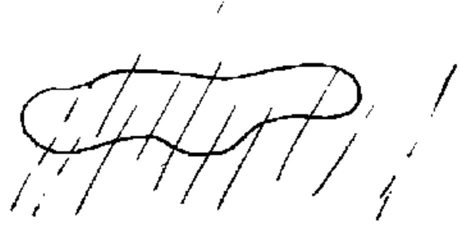

वर्षा

सन्तोष खन्ना

ओ वर्षा गांवों की रानी
खेत खेत और ताल ताल
करता तेरी अगवानी।।

जेठ हाड़ की शिखर दुपहरी,
बिन वारि सब सूना सूना
कब से लगी गगन पर अँखियां,
हृदय हुआ हर ऊना ऊना।
फण फैलाये सांप-सा सूखा,
पसरा हर क्यारी क्यारी
अब तो आ जाओ आलि,
उर्वरा धरा सब हुई बिरानी
ओ वर्षा गांवों की रानी।

तुम आओ तो खेत झूमते,
झूमर पहने हर डाली
नहा जाता हर पौधा पत्ती,
चलने लगती हर खाली,
बाग में मोर, पपीहा नाचे,
कोयल गाती मतवाली,
खिल जाता मुरछाया तन-मन
ओ हरषै हीरामन रानी।
ओ वर्षा गांवों की रानी।।

बी-280, लक्ष्मीबाई नगर,
नई दिल्ली-110023

कृषि विपणन में मण्डियों की भूमिका

डा. एम. एल. सोनी
डा. पी. के. शर्मा

"जब खेती फलती-फूलती है, तब सब धन्धे पनपते हैं, किन्तु जब भूमि को बंजर छोड़ दिया जाता है तो अन्य सभी धन्धे नष्ट हो जाते हैं।"

—सुकरात

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं कृषि विपणन का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में मात्र जीवन-यापन का साधन या उद्योग-धन्धा ही नहीं है, वरन् इसे अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी के रूप में स्वीकार किया जाता है। आज कृषक कृषि विपणन से संबंधित अनेक कठिनाइयों एवं समस्याओं का सामना कर रहे हैं। कृषकों को उनकी उपज की उचित कीमत प्राप्त नहीं हो पाती और न ही उपज का भुगतान शीघ्र ही हो पाता है। वर्तमान प्रावैगिक समाज में भारतीय कृषकों के हितों की सुरक्षा एवं उनकी उचित कीमत प्रदान कराने में कृषि उपज मण्डियों का क्या योगदान है? इस विषय पर प्रकाश डालने के लिये लेखक द्वय ने 'मध्यप्रदेश में कृषि विपणन में मण्डियों की भूमिका' विषय को अध्ययन के लिये चुना है।

अध्ययन के उद्देश्य

मध्य प्रदेश राज्य में कृषि उपजों का क्रय-विक्रय कृषि उपज मंडियों एवं उप मंडियों के माध्यम से किया जाता है। राज्य में 1 जनवरी, 1990 की स्थिति में 273 मण्डियां एवं 257 उप मंडियां कार्यरत रही हैं। मंडियों की एकत्रीकरण, संग्रहण, परिवहन, वित्त, प्रभावीकरण व श्रेणीकरण, नमीमापन, नापतौल, विपणन सूचना, मध्यस्थों की अधिकता, उपज का उचित व शीघ्र भुगतान प्रचलित कुप्रथाएं आदि समस्याओं हेतु सुझाव देना, इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है जिससे कि प्रदेश की कृषि विपणन-व्यवस्था में मंडियां आदर्श व्यवस्था स्थापित कर सकें।

मंडियों का इतिहास

मध्यप्रदेश में नियमित कृषि उपज मंडियां केन्द्रीय कृषि उपज मण्डी अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत स्थापित की गयीं। स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1960 में मध्यप्रदेश कृषि उपज मण्डी अधिनियम पारित किया गया। इसके उपरान्त अधिनियम में अनेक बार संशोधन किये गये। राज्य में सर्व प्रथम ग्वालियर जिले के लश्कर, डबरा एवं भाण्डेर स्थानों पर मंडियां स्थापित की गयीं। उक्त मंडियों की स्थापना के उपरान्त मंडियों की संख्या लगातार बढ़ती गयी। मंडियों की वर्षवार जानकारी नीचे सारणी में दर्शायी गयी है—

सारणी क्रमांक-1

वर्ष	मंडियों की संख्या	वर्ष	मंडियों की संख्या
1941-42	41	1982-83	256
1952-53	49	1985-86	265
1960-61	87	1989-90	273
1970-71	225		

वर्तमान में राज्य में 273 मंडियां एवं 257 उप-मंडियां कार्यरत हैं। मंडियों की संख्या में वर्ष 1960-70 के दशक में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है।

कृषि विपणन में नियमित मण्डियों की उपादेयता

कृषि उपज मण्डियां वे स्थान हैं जहां हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक भाग्य लिखा जाता है। कृषि उपज मण्डी का नाम सुनकर कृषकों की आंखों में एक नई चमक दौड़ जाती है। कृषकों द्वारा अपने खेतों में गिराये गये पसीने का मुआवजा इन्हीं मण्डियों में तय होता है। कृषि उपज मण्डियों

का महत्व केवल कृषकों के लिये ही है, ऐसी बात नहीं है। मण्डियां तो किसान, उद्योगपति, व्यापारी, उपभोक्ता, सरकार आदि सभी के लिये महत्वपूर्ण होती हैं। इन मण्डियों के माध्यम से कृषकों की कृषि उपजों का विक्रय करने के पश्चात उन्हें उचित मूल्य दिलाया जाता है। यहीं से उपभोक्ताओं को कम से कम कीमत पर प्रमाणित एवं श्रेणीकृत वस्तुएं प्राप्त होती हैं। व्यापारीगण क्रय-विक्रय में हिस्सा लेकर लाभार्जन करते हैं, तो कारखाना स्वामी अपने कारखानों के लिये कपास, तिलहन, दलहन, गन्ना जैसी महत्वपूर्ण कच्ची सामग्री खरीदते हैं।

नियमित मण्डियों की स्थापना के कारण ही अनियमित मण्डियों की कुप्रथाओं को समाप्त किया जा सका है। कृषि मण्डियों की स्थापना से कृषकों ने राहत की सांस ली है। कृषकों को आज उनकी उपज की उचित कीमत प्राप्त होती है जिससे कृषक अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहित होता है। मण्डियों की स्थापना से जहां एक ओर, कृषकों को महाजनों एवं गांव के बनियों के चंगुल से छुड़ाया गया है वहीं दूसरी ओर, कृषकों को बाजार सूचना एवं अन्य सुविधाओं के माध्यम से संतुष्ट कराया गया है।

मण्डियों में सुविधाएं

कृषकों, व्यापारियों एवं अन्य कृत्यकारियों की सुविधा के लिये मण्डियों में अनेक निर्माण एवं विकास कार्य कराये गये हैं। मण्डियों द्वारा एकत्रीकरण, संग्रहण, परिवहन, विपणन सूचनाएं एवं अनुसंधान संबंधी अनेक सुविधाएं कृषकों व व्यापारियों को उपलब्ध करायी गयी हैं। मण्डियों से सम्बद्ध विभिन्न वर्गों को असुविधाओं व कठिनाइयों का सामना न करना पड़े इस हेतु मण्डियों में सुविधाओं की उपलब्धता को नीचे सारणी में दर्शाया गया है :

सारणी क्रमांक—2

क्रमांक	उपलब्ध सुविधा का नाम	मण्डियों की संख्या	
		जहां सुविधा उपलब्ध है	जहां सुविधा उपलब्ध नहीं है
1.	कार्यालय भवन	171	102
2.	नीलाम चबूतरा (छायादार)	147	126
3.	नीलाम चबूतरा (खुला)	125	148
4.	पीने के पानी की व्यवस्था	161	112
5.	आन्तरिक सड़कें	90	183
6.	तार फेंसिंग/चहार दीवारी	166	107
7.	कृषक विश्रामगृह	76	197
8.	गोदाम व्यवस्था	106	167
9.	पशु शेड	36	237
10.	सार्वजनिक शौचालय	84	189
11.	दुकानमय गोदाम	54	219
12.	व्यवसायिक दुकानें	30	243

सारणी क्रमांक—2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रदेश की अनेक मण्डियों एवं उप मण्डियों में अनेक सुविधाओं का अभाव है। अतः मण्डियों को विकास कार्य तीव्र गति से करना चाहिये।

मण्डियों में भण्डारण-व्यवस्था

प्रदेश की मण्डियों एवं उप मण्डियों के प्रांगणों में संग्रहरण की उपयुक्त व्यवस्था हेतु अनेक गोदाम निर्मित किये गये हैं। "अन्न का हर दाना सोना है इसे नष्ट होने से बचाना उत्पादन करने के बराबर है।" उपर्युक्त कथन कृषि उपजों के वैज्ञानिक भण्डारण का महत्व प्रतिपादित करता है। यही कारण है कि मण्डियों में भण्डारण की व्यापक-व्यवस्था हेतु प्रयास किये गये हैं। मण्डी प्रांगणों में अनाज संग्रहण हेतु निम्न भण्डारण क्षमता उपलब्ध है :

सारणी क्रमांक—3

क्रमांक	विवरण	गोदाम संख्या	भण्डारण क्षमता (मीट्रिक टन में)
1.	मण्डियों के गोदाम	409	1,15,000
2.	राज्य भण्डार गृह निगम	66	2,30,000
3.	केन्द्रीय भण्डार गृह निगम	23	18,300
4.	स्टेट मार्केटिंग फेडरेशन	30	27,500
5.	मार्केटिंग सोसायटी	8	3,200
	कुल	536	3,94,000

सारणी क्रमांक—3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रदेश की मण्डियों में कुल 536 गोदाम हैं जिनकी भण्डारण क्षमता 3.94 लाख मीट्रिक टन है जबकि मण्डियों में कुल आवक 62 लाख मीट्रिक टन से भी अधिक होती है। स्पष्ट है कि आवक की तुलना में भण्डारण क्षमता अत्याल्प है।

विपणन-योग्य आधिक्य एवं उसका विक्रय

कृषक अपनी उपज में से, वर्ष भर के लिये घरेलू उपभोग हेतु एवं कृषि के बीज के लिये कुछ उपज अपने पास बचाकर रख लेता है। उक्त उद्देश्यों से बचायी गयी उपज के अतिरिक्त कृषक के पास जो कुछ शेष बचता है, उसे विपणन-योग्य आधिक्य कहते हैं। इसी विपणन-योग्य आधिक्य का विक्रय कृषकों द्वारा मण्डियों में किया जाता है। कृषक इस आधिक्य का 35 प्रतिशत भाग, अनेक कारणों से

गांव में ही बेच देता है। ये कारण हैं—यातायात के साधनों का अभाव, गांव के बनियों का ऋणी होना, उपज की मात्रा कम होना आदि।

विगत वर्षों में कृषि उपज मण्डियों में कृषि उपजों की आवक में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। मण्डियों में आवक की वर्ष वार स्थिति एवं उत्पादन से आवक की तुलना को सारणी क्रमांक—4 में व्यक्त किया गया है :

सारणी क्रमांक—4

वर्ष	कृषि उपजों की आवक (मीट्रिक टन)	निर्देशांक (1984-85 आधार वर्ष)
1984-85	35.40	100.0
1985-86	42.41	119.8
1986-87	39.22	110.8
1987-88	64.20	181.4
1988-89	68.93	194.7

उपरोक्त सारणी—4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्ष 1986-87 को छोड़कर शेष वर्षों में मण्डियों में आवक में निरन्तर वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट है कि मण्डियों के प्रति कृषकों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है।

उपज विक्रय के ढंग

विपणन-योग्य आधिक्य के विक्रय हेतु मण्डियों में तीन तरीके अपनाये जा सकते हैं—

(अ) कपड़ों के अन्दर गुप्त अंगुलियों द्वारा,
(ब) खुले रूप से नीलामी द्वारा (घोष विक्रय),
(स) खुले व्यक्तिगत सौदों द्वारा।

प्रदेश की मण्डियों में घोष विक्रय पद्धति से उपजों का विक्रय होता है। इन मण्डियों में सौदे मण्डी समिति के विधानानुसार प्रारम्भ किये जाते हैं। घोष विक्रय के समय क्रेता स्पष्ट नीलाम बोली बोलता है। अधिकतम घोष करने वाले अनुज्ञप्तिधारी क्रेता को माल सौंप दिया जाता है। पर्ची कटने के उपरान्त बिका हुआ माल किसी भी दशा में वापिस नहीं किया जाता है।

मण्डियों-संबंधी समस्याएं

राज्य में "अ" श्रेणी की 16, "ब" श्रेणी की 33, "स" श्रेणी की 79 एवं "द" श्रेणी की 145 मण्डियां हैं। "द" श्रेणी की प्रायः सभी मण्डियों में न्यूनतम आवश्यक सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं। प्रदेश की अनेक मण्डियों में अभी अनेक कुप्रथाएं प्रचलित हैं जिससे कृषकों का आर्थिक शोषण होता है। मण्डियों की समस्याएं एवं कमियां निम्नांकित हैं—

(1) प्रदेश की अनेक मण्डियों में उपयुक्त मण्डी प्रांगण का अभाव है। कच्चे व खुले प्रांगण के कारण कृषकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

(2) कृषक-विक्रेता असंगठित हैं जिससे संगठित व चतुर व्यापारी इन कृषकों का अनावश्यक आर्थिक शोषण करते हैं।

(3) मण्डियों में संग्रहण सुविधाओं का अभाव है जिससे कृषकों का अनाज अनावश्यक रूप से नष्ट हो जाता है।

(4) प्रमाणीकरण, श्रेणीकरण एवं नमीमापन की व्यवस्था न होने से कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता।

(5) मण्डी समिति को अधिनियम में नगण्य अधिकार प्रदान किये गये हैं जिससे विकास कार्य धीमी गति से होते हैं।

(6) मध्यस्थों की अधिक संख्या के कारण कृषकों को उनकी उपज के विक्रय पर पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता और न ही उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर माल मिलता है।

(7) मण्डियों की कपटपूर्ण नीति के कारण आज भी अनेक प्रकार की अनुचित कटौतियां कृषकों से वसूल की जाती हैं।

(8) ग्रामीण क्षेत्रों में बलात् विक्रय के कारण कृषकों को अपनी उपज कम मूल्य पर बेचनी पड़ती है। इससे उन्हें आर्थिक हानि होती है।

(9) व्यापारीगण, कृषकों को उनकी उपज का भुगतान काफी विलम्ब से करते हैं।

(10) वार्षिक प्रतिवेदन एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अभाव में कृषकों को मूल्य व अन्य आवश्यक बातों की जानकारी नहीं हो पाती है।

(11) प्रदेश में 459 विकास खण्ड एवं 76,468 गांव हैं जबकि मण्डियों की संख्या 273 एवं उप मण्डियों की संख्या 257 हैं। यह संख्या अत्याल्प है।

समस्याओं के निराकरण हेतु सुझाव

मण्डियों में व्याप्त कमियां, कठिनाइयां एवं समस्याएं कोई असाध्यरोग नहीं हैं। अधिनियम का कड़ाई से पालन करने एवं मण्डियों की कार्यप्रणाली को सक्षम बनाकर, कृषकों के शोषण

को रोका जा सकता है। मण्डियों की समस्याओं के निराकरण के उपाय निम्नांकित हैं :

(1) सुविधायुक्त पक्के मण्डी प्रांगणों का निर्माण कराया जाना चाहिये जिससे कृषि उपजों की धूप, धूल, पानी आदि से रक्षा संभव हो सके।

(2) प्रत्येक मण्डी समिति द्वारा व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर कृषकों को प्रशिक्षित किया जाये जिससे वे संगठित हो सकें।

(3) भण्डारण सुविधाओं का विस्तार किया जाये।

(4) प्रत्येक मण्डी में एक-एक प्रमाणीकरण, श्रेणीकरण एवं नमीमापन प्रकोष्ठ पृथक से स्थापित किया जाये।

(5) अधिनियम के अधीन मण्डी समितियों को विकास कार्य संबंधी व्यापक अधिकार दिये जायें।

(6) मध्यस्थ-प्रथा समाप्त की जाये। यदि मण्डियां एवं सहकारी विपणन समितियां सीधे उत्पादकों से उपज खरीदें तो कृषकों का शोषण समाप्त किया जा सकता है।

(7) मण्डियों में प्रचलित कुप्रथाओं को समाप्त किया जाये एवं अनुचित कटौतियां वसूल न की जायें।

(8) अधिनियम का कड़ाई से पालन किया जाये जिससे कृषकों को शीघ्र भुगतान कराया जा सके।

(9) मण्डियों का क्षेत्राधिकार बढ़ाया जाये जिससे बलात् विक्रय प्रथा बिल्कुल समाप्त की जा सके।

(10) मण्डियों एवं उप मण्डियों की स्थापना क्रमशः प्रत्येक विकास खण्ड एवं गांव में की जाये।

अध्ययन के परिणाम

मध्य प्रदेश की कृषि उपज मण्डियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि मण्डियां जिन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर स्थापित की गयी हैं, उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में लगभग असफल रही हैं। कारण, आज भी मण्डियों में अनेक प्रकार की कुरीतियां प्रचलित हैं। साथ ही कृषकों को उनके उपज के मूल्य का उचित एवं शीघ्र भुगतान कराने में मण्डियां असफल रही हैं। मध्य प्रदेश की ही नहीं वरन देश के अन्य राज्यों की मण्डियों द्वारा भी उक्त सुझावों के क्रियान्वयन से कृषि विपणन-व्यवस्था को काफी सीमा तक आदर्श बिन्दु तक पहुंचाया जा सकता है। भारतीय कृषि के बढ़ते हुए चरणों को दृष्टिगत रखते हुए मण्डियों का भविष्य अत्यधिक उज्ज्वल बन सकता है, बशर्ते उक्त सुझावों के क्रियान्वयन से समस्याओं का निराकरण किया जाये। निःसन्देह इस व्यवस्था से मण्डी समितियां आदर्श-व्यवस्था स्थापित करने में सक्षम हो सकेंगी।

गवर्नमेन्ट साइंस एण्ड कामर्स कालेज,
बेनजीर, भोपाल (मध्य प्रदेश)

नये आयाम

सतपाल

कृषि को नये आयाम मिलें।
प्रगति को नव सोपान मिलें।।

खेतों और मेहनत का नाता।
अब और प्रगाढ़ हुआ जाता।।
धरती ने श्रम को इज्जत दी।
फसलों को शुभ वरदान मिलें।।

खेतों को पहुंचे खोज नई।
हो हर्ष, उत्कर्ष की मोज नई।।
आशाएं फसलों में उपजे।
सन्तुष्ट हर किसान मिले।।

कृषि उन्नति का आधार बने।
कृषि आदर का व्यापार बने।।
हरित क्रान्ति क्षुधा की शत्रु बने।
इस क्रान्ति को गति समान मिलें।।

कृषि को नये आयाम मिलें।
प्रगति को नव सोपान मिलें।।

18/3 बी, पेशवा मार्ग,
गोल मार्किट, नई दिल्ली

शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना (सीयू योजना)—एक अध्ययन

वसंत मेहता
संजय जैन

देश में पिछले वर्षों में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1901 में देश की जनसंख्या लगभग 24 करोड़ थी, वह आज बढ़कर 80 करोड़ से भी अधिक हो गई है। जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि के कारण देश में बेरोजगारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में देश में जहां बेरोजगारों की संख्या 0.53 करोड़ थी वह आज बढ़कर 4 करोड़ से भी अधिक हो गयी है।

पिछले वर्षों में देश में शिक्षा के तेजी से प्रसार होने के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में उस गति से वृद्धि नहीं हो पाई, जिसके फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त में 14.27 लाख शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार थे। शिक्षित बेरोजगारों में सर्वाधिक संख्या 13.38 लाख कला, वाणिज्य व विज्ञान (स्नातक व स्नातकोत्तर) व्यक्तियों की थी। इंजीनियरों की संख्या 0.83 लाख थी। डाक्टर तथा कृषि बेरोजगारों की संख्या क्रमशः 0.065 तथा 0.047 लाख थी।

पिछले वर्षों में बेरोजगार व्यक्तियों में मैट्रिक पास व्यक्तियों की तुलना में स्नातक तथा स्नातकोत्तर पास व्यक्तियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। सन् 1961 में शिक्षित बेरोजगारों में से 78.5 प्रतिशत व्यक्ति मैट्रिक पास थे, सन् 1979 में इनका प्रतिशत कम होकर 54.50 प्रतिशत ही रह गया। कुल श्रम शक्ति में 2.7 प्रतिशत व्यक्ति ही स्नातक तथा स्नातकोत्तर पास हैं, जबकि कुल बेरोजगारों में इनका प्रतिशत 9.4 है।

देश में बेरोजगारी की समस्या इतनी विकराल बन चुकी है कि उससे हमारा सम्पूर्ण अर्थतंत्र बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए व्यक्तियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए देश की बहुमुखी प्रगति और समृद्धि के लिए बेरोजगारी की समस्या का प्रभावी हल ढूंढना भारत के लिए निःसन्देह एक आवश्यक और गम्भीर चुनौती है। समस्या का चिन्ताजनक पहलू यह है कि अब तक किए गए प्रयत्न बेरोजगारों की बढ़ती हुई फौज पर अंकुश नहीं लगा सके हैं, कुछ सफलता मिली है, परन्तु कुल मिलाकर यह निष्प्रभावी ही मानी जानी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक योजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या पूर्व योजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या से अधिक ही है।

केन्द्र व राज्य सरकारों ने बेरोजगारी दूर करने के लिए समय-समय पर कई योजनाएं प्रारम्भ की हैं जैसे, ग्रामीण युवकों के लिए स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (ट्राइसेम), शहरी गरीबों हेतु स्वरोजगार योजना (सेपप), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन. आर. ई. पी.), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.), काम के बदले अनाज योजना, पैकेज आफ प्रोग्राम, बीस सूत्री कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना तथा शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने के लिए 'शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना' (सीयू योजना)।

शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना

अगस्त, 1983 को हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में शिक्षित बेरोजगार युवकों को रोजगार देने की योजना की घोषणा की थी। इस योजना का प्रारूप केन्द्रीय सरकार ने रिजर्व बैंक के सहयोग से तैयार किया था।

इस योजना के प्रमुख बिन्दु निम्नानुसार हैं:

(1) इस योजना का मुख्य लक्ष्य शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार के लिए उद्योग सेवा तथा व्यवसाय क्षेत्र में प्रेरित करना है।

(2) ऋण केवल उन व्यक्तियों को दिया जाएगा जो कम से कम मैट्रिक पास हों तथा जिनकी आयु 18 से 35 वर्ष तक हो। ऋण की अधिकतम सीमा प्रारम्भ में 25000

रुपये थी जिसे बाद में बढ़ाकर 35000 रुपये कर दी गयी।

(3) सन् 1981 की जनगणना के अनुसार जिन शहरों की जनसंख्या 10 लाख से अधिक थी, वहां यह योजना लागू नहीं होगी।

(4) इस योजना के तहत प्रदान किये जाने वाले ऋण में कार्यशील पूंजी मांग तथा विनियोग मांग सम्मिलित होंगे। ऋणों के पुन: भुगतान कार्यक्रम का निर्धारण केवल विनियोग मांग के आधार पर निर्धारित किया जाएगा। सावधि ऋण के भुगतान के पश्चात् कार्यशील पूंजी को नकद साख में परिवर्तन कर दिया जाएगा तथा इस पर सामान्य दर से ब्याज लिया जाएगा।

(5) पिछड़े हुए क्षेत्रों में ऋण पर ब्याज की दर 10 प्रतिशत तथा अन्य क्षेत्रों में ब्याज की दर 12 प्रतिशत होगी।

(6) ऋणों की सावधि ऋण का पुन: भुगतान 3 से 7 वर्ष के मध्य करना होगा। बैंक इस अवधि में 6 से 18 माह तक की रियायत दे सकते हैं।

(7) राज्य सरकार के निर्देशन में राज्यों में इस योजना का क्रियान्वत होगा। जिला स्तर पर जिला उद्योग केन्द्र जिले के अग्रणी बैंक के साथ विचार-विमर्श कर इस योजना को क्रियान्वियन करेंगे।

(8) चयनित लाभार्थियों को बैंक ऋण का 25 प्रतिशत भाग सरकार द्वारा अनुदान के रूप में होगा। रिजर्व बैंक से अनुदान प्राप्त होने पर इसे सावधि ऋण के पुन: भुगतान के रूप में सम्मिलित किया जायेगा।

(9) इस योजना के तहत चयनित लाभार्थियों से बैंक न तो सीमान्तर राशि, न ही किसी प्रतिभूति, न ही किसी अन्य व्यक्ति की गारन्टी की मांग करेंगे। बैंक द्वारा प्रदत्त ऋणों से जो सम्पत्तियां क्रय की जायेगी वही ऋण की प्रतिभूति के रूप में होगी।

(10) बैंकों की शाखाओं से यह अपेक्षा है कि स्त्री प्रार्थियों को तथा औद्योगिक प्रशिक्षित व्यक्तियों को इस योजना में प्राथमिकता देंगे।

(11) लाभान्वित व्यक्तियों में से कम से कम 30 प्रतिशत भाग अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों का हो।

(12) इस योजना के तहत कम से कम 50 प्रतिशत ऋण लघु उद्योगों को तथा व्यापक उपक्रम के लिए 30 प्रतिशत से अधिक न हो।

उदयपुर जिले में सीयू योजना का क्षेत्रीय अध्ययन

प्राथमिक आंकड़े प्राप्त करने के लिए हमने एक अनुसूची बनाई। सीयू योजना के अन्तर्गत उदयपुर जिले में लाभान्वित किए गए 450 व्यक्तियों की हमने एक सूची बनाई तथा इन 450 व्यक्तियों में से हमने 150 व्यक्तियों का चयन किया तथा चयनित व्यक्तियों से अनुसूची के माध्यम से कई प्रकार की सूचनाएं प्राप्त कीं जिसका विश्लेषण इस प्रकार हैं:

रिजर्व बैंक आफ इंडिया के द्वारा सीयू योजना के लिए निर्धारित अधिकांश मापदण्डों का उदयपुर जिले में जिला उद्योग केन्द्र तथा अग्रणी बैंक स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर ने पालन किया है। उदयपुर जिले में सीयू योजना के अन्तर्गत लाभान्वित शत प्रतिशत व्यक्ति 18 से 35 वर्ष के मध्य हैं। इस शोध कार्य के लिये चयनित व्यक्तियों में से 55 (36.67 प्रतिशत) महिलाएं हैं, जिससे स्पष्ट है कि सीयू योजना के अन्तर्गत महिलाओं को उचित प्राथमिकता दी गयी है। चयनित व्यक्तियों में से 46.67 प्रतिशत व्यक्तियों को उद्योग तथा 30 प्रतिशत व्यक्तियों को व्यापार कार्य के लिए ऋण प्रदान किया गया था। अत: उदयपुर जिले में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के इस दिशा निर्देश, कुल ऋणों का कम से कम 50 प्रतिशत लघु उद्योगों को तथा व्यापार कार्य के लिए 30 प्रतिशत से अधिक ऋण न हो, का पूर्ण पालन हुआ है।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के निर्देशानुसार इस योजना के अन्तर्गत उन्हीं शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार के लिए ऋण सुविधाएं प्रदान की जाएंगी जो कम से कम मैट्रिक पास हों। इस अध्ययन के अन्तर्गत हम यह देखते हैं कि रिजर्व बैंक के उपरोक्त निर्देश का व्यापारिक बैंकों द्वारा पूर्ण पालन किया गया है। चयनित 150 व्यक्तियों में से 105 (70 प्रतिशत) व्यक्ति दसवीं से स्नातक, 20 (13.33 प्रतिशत) स्नातकोत्तर तथा शेष 251 (16.67 प्रतिशत) व्यक्ति जिला उद्योग केन्द्र से तकनीकी प्रशिक्षित व्यक्ति हैं।

जिला उद्योग केन्द्र तथा अग्रणी बैंक को ऋण के लिए व्यक्तियों का चयन करते समय यह ध्यान रखना है कि लाभान्वित व्यक्तियों में से कम से कम 30 प्रतिशत व्यक्ति अनुसूचित जाति एवं जनजाति से हों। इस शोध कार्य में हम देखते हैं कि केवल 30 (20 प्रतिशत) व्यक्ति ही अनुसूचित जाति एवं जनजाति से हैं अत: जिला उद्योग केन्द्र व अग्रणी बैंक को व्यक्तियों का चयन करते समय अनुसूचित जाति व जनजाति के व्यक्तियों को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिए।

रिजर्व बैंक आफ इन्डिया के निर्देशानुसार उन्हीं व्यक्तियों को ऋण प्रदान किया जाएगा जिनकी पारिवारिक आय वार्षिक

6000 रुपये तक हो। इस शोध कार्य में हम देखते हैं कि 108 (72 प्रतिशत) व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी पारिवारिक आय 6000 रुपये से भी अधिक है। अतः स्पष्ट है कि जिला उद्योग केन्द्र तथा अग्रणी बैंक ने व्यक्तियों के चयन में पारिवारिक आय के मापदण्ड को उचित महत्व नहीं दिया। अवश्य ही व्यक्तियों के द्वारा पारिवारिक आय के सम्बन्ध में जो सूचनाएं जिला उद्योग केन्द्र तथा अग्रणी बैंक को प्रदान की गयी होंगी वे सत्य से परे होंगी। भविष्य में जिला उद्योग केन्द्र तथा अग्रणी बैंक को व्यक्तियों के चयन में और भी अधिक सावधानी रखनी होगी।

सीयू योजना के तहत प्रारम्भ में एक व्यक्ति को अधिकतम 25000 रुपये का ऋण दिया जा सकता था, जिसे बाद में बढ़ाकर 35000 रुपये कर दिया गया। इस शोध कार्य के लिए चयनित व्यक्तियों में से 10 प्रतिशत व्यक्तियों को 10000 रुपये से भी कम, 40 प्रतिशत व्यक्तियों को 10 हजार से 20 हजार रुपये तथा शेष 50 प्रतिशत व्यक्तियों को 20-35 हजार रुपये के मध्य ऋण प्रदान किया गया था।

सीयू योजना के अन्तर्गत लाभान्वित किए गये व्यक्तियों में से 61.27 प्रतिशत व्यक्तियों का यह मत है कि उन्हें जो ऋण बैंकों के द्वारा प्रदान किया गया है, वो अपर्याप्त हैं तथा इनमें से 62.16 प्रतिशत व्यक्तियों ने 25-50 हजार तथा 27.03 प्रतिशत ने 50 हजार से एक लाख रुपये तक ऋण की और आवश्यकता बतलाई। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि इन व्यक्तियों को ऋण की आवश्यकता होते हुए भी उन्होंने अन्य किसी स्रोत से ऋण नहीं लिया।

उदयपुर जिले में सीयू योजना के अन्तर्गत चयनित सभी व्यक्तियों ने बैंक से जिस कार्य के लिए ऋण लिया था, उसी कार्य में उनका प्रयोग किया तथा उनमें से 96.97 प्रतिशत व्यक्ति आज भी उसी कार्य में कार्यरत हैं। अतः स्पष्ट है कि जिन व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत ऋण मिल पाया उन्हें प्रदत्त ऋण स्वरोजगार प्रदान करने में सफल रहा है।

इस शोध कार्य के लिए चयनित व्यक्तियों में से 105 (70 प्रतिशत) व्यक्ति किस्तों का नियमित भुगतान कर रहे हैं। इस योजना के तहत ऋण लेने के 3 वर्ष बाद से ऋणों की किस्तों का भुगतान करना पड़ता है तथा अधिकांश व्यक्तियों ने 1985-86, 1986-87 के मध्य ऋण लिया है इसलिए अब तक व्यक्ति ऋणों का कम भुगतान ही कर पाये हैं। इस शोध कार्य के लिये चयनित व्यक्तियों में से 85 (56.67 प्रतिशत) व्यक्तियों ने अभी तक 25 प्रतिशत ऋणों का भुगतान किया है तथा 50 (33-33 प्रतिशत) व्यक्तियों ने 26 प्रतिशत से 50 प्रतिशत ऋण का भुगतान किया है। 50 (10 प्रतिशत) व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने अभी तक ऋणों का बिल्कुल भुगतान नहीं किया है क्योंकि उन्होंने 1987-88 में ही ऋण लिया था।

इस शोध कार्य के चयनित 150 में से 130 (86.67 प्रतिशत) व्यक्तियों की राय में बैंक तथा जिला उद्योग केन्द्र का व्यवहार उनके प्रति सन्तोषजनक रहा है। चयनित व्यक्तियों में से लगभग दो तिहाई व्यक्तियों का यह मत है कि इस योजना के तहत ऋण लेने के लिए जो क्रियाविधि अपनायी जाती है तथा फार्म आदि भरना एक कठिन क्रिया है अतः रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को ऋण लेने की प्रक्रिया, कागजी कार्यवाही आदि को और आसान बनाना चाहिए।

130 (86.67 प्रतिशत) व्यक्तियों की राय से सीयू योजना जिले में ठीक तरह से क्रियान्वित हो रही है तथा 143 (95 प्रतिशत) व्यक्तियों के मतानुसार भविष्य में भी इस योजना को जारी रखा जाना चाहिए क्योंकि यह योजना शिक्षित बेरोजगार युवकों में एक नई आशा व जागृति लाई है। इस योजना के तहत बहुत से शिक्षित बेरोजगार युवक अपने पैरों पर खड़े हो पाये अर्थात् आत्मनिर्भर हो गये हैं।

441, भूपाल पुरा,
डीन एवं हैड आफ डिपार्टमेंट ई. ए. एफ. एम.
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर-313001

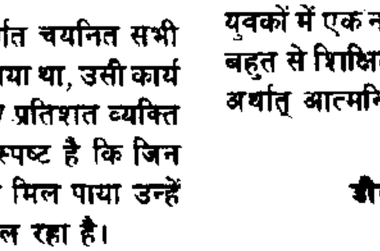

ग्रामीण विकास की सम्भावनायें एवं स्वरूप

रमेश बहुगुणा (सुरेश)

देश स्वतंत्रता के बयालिस वर्ष के पश्चात् आज भी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। ये हैं—बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक अस्थिरता, सामाजिक असमानता, निरक्षरता आदि-आदि। यदि लोगों के रहन-सहन का स्तर बेहतर बनाया जा सकता तो इन जटिल समस्याओं में गिरावट आना निश्चित है। आज तक हम जो सुविधायें ग्रामीण अंचलों में देते आये हैं वह शहरों की तुलना में नहीं के बराबर हैं जिसके फलस्वरूप शहरों की ओर ग्रामीण जनता का पलायन जारी है। इन्टरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन की रिपोर्ट जो अगस्त 1981 में प्रकाशित हुई थी, इसमें खेद प्रकट किया गया कि एशिया के सभी देशों में ग्रामीण जनता का पलायन बहुत बड़ी संख्या में नगरों की ओर जारी है। यदि यह प्रवृत्ति जारी रही तो एशियाई शहरों की जनसंख्या इस शताब्दी के अन्त तक 1.5 बिलियन हो जायेगी। भारत एवं उसके सभी पड़ोसी अल्पविकसित देशों ने इस कठिन समस्या से निपटने के लिए अनेक प्रयास किये लेकिन अभी तक आशातित सफलता नहीं मिल पाई क्यों? जब तक शहरी चकाचौंध को ग्रामीण अंचलों तक नहीं पहुंचाया जा सकता या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब तक विकास का वास्तविक लाभ ग्रामीण जनता (निर्धन) की पूर्ण रूप से भागीदारी नहीं होती तब तक पलायन रुक नहीं सकता। इससे शहरों में प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ेगा ही और यह भी सम्भव है कि शहर भी नष्ट हो सकता है।

सरकार के द्वारा किये गये प्रयास

आजादी के बाद ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देने के लिए संविधान के अनुच्छेद 31-ए में यह व्यवस्था की गयी कि राज्य, ग्राम पंचायतों को संगठित करने की दिशा में काम करेगा और उन्हें इस तरह के अधिकार प्रदान करेगा, जो उनके स्वशासी सरकार की इकाई के रूप में काम करने के लिए जरूरी हों। बाद में इस धारा को संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 40 में राज्य के नीति निदेशक तत्व के रूप में स्वीकार कर लिया। शायद ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में यही एक महान भूल थी क्योंकि विवाद की स्थिति में नीति निदेशक तत्वों को आधार नहीं माना जा सकता।

गांवों को स्वशासी और आत्मनिर्भर बनाने के लिए 1952 में सामुदायिक विकास योजना और 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा कार्यक्रम एवं इनमें उत्पन्न त्रुटियों के लिए 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति गठित की गयी। समिति ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की ताकि गांवों के लोग देश के विकास में भागीदार बन सकें और गांवों का पुनर्निर्माण हो सके। इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए पंचायत प्रणाली (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद) का सुझाव दिया गया जिसका शुभारम्भ राजस्थान के नागौर क्षेत्र में 2 अक्तूबर 1959 को किया गया। अनेक कारणों से यह त्रिस्तरीय प्रणाली उपयुक्त नहीं हुई। इसकी कमी को दूर करने हेतु 1978 में अशोक मेहता और 1986 में सिंघवी समिति का गठन हुआ और पुनः संशोधन के लिए भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की सरकार ने इसे 15 मई 1989 को संसद में पेश किया परन्तु यह राज्य सभा में पारित न हो सका।

अब तक जो कार्यक्रम लागू किये गये उनमें वृक्षारोपण, पशुपालन, कृषि पर विशेष ध्यान, भूमि सुधार, मछली पालन, डेरी उद्योग, घरेलू उद्योग (साबुन उद्योग, हथकरघा, रेशम, रेशा कताई, पपीते पर आधारित उद्योग, मधुमक्खी पालन, भेड़ पालन, तिलहनों पर आधारित उद्योग) आदि तथा अनेक परम्परागत उद्योगों (काष्टकला, लौह कला, बासनिगल उद्योग, चटाई, गुड़-खाण्डसारी, चक्की, जूता निर्माण, रस्सी बनाना, ऊन उद्योग, तेल घानियां) को प्रोत्साहन देने की नीति रही है। उपरोक्त कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों के वे भाग जो शहरी क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं उनमें आर्थिक समृद्धि बढ़ी है, यदि कुल मिलाकर मूल्यांकन किया जाये तो स्थिति में खास परिवर्तन नहीं हुआ। इन व्यवसायों से सम्बद्ध लोगों का पारिश्रमिक पैसों की दृष्टि से तो बढ़ा है पर वास्तविकता यह है कि इसमें कमी आयी है। जिस तेजी के साथ मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है उस अनुपात में मजदूरी नहीं बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी स्थिति को पैदा करने के लिए मुख्यत: दो कारण जिम्मेदार हैं (1) विकास की कमी (2) असमानता। आर्थिक समृद्धि तथा गरीबी के निवारण करने की दिशा में यह

आवश्यक है इन दोनों कारकों को एक साथ क्रियान्वित किया जाये। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित अनेक विचार गोष्ठियों में बार-बार यह बात कही गई है। भूमि सुधार कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देना चाहिए और कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जो किसान भूमि को जोतता है उस पर उसका ही स्वामित्व होना आवश्यक है।

कार्यक्रमों में असमानता

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए सही नीति का निर्धारण न होने से अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं। केरल, पंजाब ऐसे राज्य हैं जहां भूमि सुधार कार्यक्रम पर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे बड़े राज्यों की तुलना में अधिक जोर दिया गया, परिणामस्वरूप इन राज्यों में ज्यादा लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए। देश के अन्य राज्यों के अपेक्षाकृत विकास की गति तेज रही है। ग्रामीण अंचलों की आर्थिक सम्पन्नता तथा कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता के लिए हरित-क्रान्ति को जन्म दिया गया। सौभाग्यवश यह कार्यक्रम पंजाब में लागू हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि यह कार्यक्रम कुछ ही क्षेत्रों एवं कुछ ही फसलों को प्रभावित कर सका, जिन क्षेत्रों एवं फसलों में इसके माध्यम से व्यापक सफलता प्राप्त की गई वहां अमीर-गरीब के बीच खाई और चौड़ी हो गई क्योंकि यह मुख्य व्यवसाय माना जाने लगा और इसने बाजार को भी प्रभावित किया। भूमिग्रहण एवं जमीन की भूख निरन्तर बढ़ने लगी जिसके कारण सामाजिक असमानता उत्पन्न हुई और यह उद्योग पूंजीपतियों के कक्ष से नियंत्रित होने लगा। पंजाब खाद्यान्न के क्षेत्र में देश में अन्य भागों से आगे है परन्तु वहां खेतिहर मजदूरों का जीवन सन्तोषप्रद नहीं है। मजदूरों की संख्या का प्रतिशत एवं दरिद्रता दोनों में वृद्धि हुई है। स्त्रियों की संख्या पुरुष मजदूर वर्ग से बढ़ गयी है इसलिए यह आवश्यक है की आर्थिक विकास के वर्तमान स्वरूप में मौलिक परिवर्तन लाने के लिए जोत के मालिक का उसमें स्वयं का अधिकार होना नितान्त आवश्यक है अन्यथा ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी को हटाया नहीं जा सकता।

विज्ञान एवं तकनीकी का अभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने में विज्ञान और तकनीकी का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इन क्षेत्रों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए किस सीमा तक तकनीकी का प्रयोग किया जाये, इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में मतभेद है। देश के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी परम्परागत साधनों का प्रयोग किया जाता है। यह बात नहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग आधुनिक तकनीक का प्रयोग करना नहीं चाहते। हरित क्रांति की व्यापक सफलता से ज्ञात होता है कि ग्रामीण जनसमुदाय उस तकनीक का स्वागत करता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। इन क्षेत्रों में ऐसी तकनीकी की आवश्यकता है जो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी, सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त, आत्मनिर्भर बनाने में पूर्ण रूप से समर्थ, उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने और रोजगार के साधनों में वृद्धि तथा स्थानीय प्रशिक्षण (प्रशिक्षण का स्तर गांव के लोगों की शिक्षा के सापेक्ष) की व्यवस्था हो तभी परम्परागत ग्रामीण जीवन के वांछनीय स्वरूप को संरक्षण के साथ आधुनिक जीवन की सुविधाओं से युक्त किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों को शहर की कार्बन कापी बनाना सर्वथा अनुचित ही है, लेकिन यहां की तुलना शहर में निर्मित माल से नहीं की जानी चाहिए। हरित क्रांति, आपरेशन फ्लड में व्यापक सफलता के पीछे तकनीकी का विशेष योगदान है। जिन उद्योगों में तकनीकी ज्ञान से क्रान्ति तथा उत्पादन के निश्चित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है उनमें परम्परागत उद्योगों के अलावा साबुन उद्योग, हथकरघा उद्योग, रेशम, रेशा कताई, पपीते एवं तिलहनों पर आधारित उद्योग, मधुमक्खी पालन, ऊर्जा के वैकल्पिक साधन, कृषि, उन्नत किस्म के बीजों के रखरखाव, फर्नीचर उद्योग आदि हैं।

ग्रामीण विकास के मुख्य आधार

लोगों की आर्थिक स्थिति को उन्नत करने तथा गांवों के पुनर्निर्माण हेतु स्थानीय प्रशासन में जनता की अधिक भागीदारी हो। ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन एवं जनता के नियंत्रण में निम्नलिखित बातों को आधार माना जाये। सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि को नमी युक्त, उन्नत किस्म के बीज, कीटनाशक दवायें, रासायनिक खादें, ग्राम उद्योग धन्धों के लिए बिजली की आपूर्ति, भूमि सुधार कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देने के साथ वृक्षारोपण, पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के समुचित उपाय, सार्वजनिक कल्याण के कार्यक्रम (स्वास्थ्य का स्तर ऊंचा उठाना, चिकित्सा के सम्पूर्ण साधन, पीने का साफ पानी, स्वच्छता आन्दोलन, गन्दी बस्तियों की सफाई, सड़कों की मरम्मत, नई सड़कों का निर्माण, यातायात के साधन, रोशनी की व्यवस्था, अकाल या बाढ़ से बचने के उपाय, मनोरंजन के साधन) और मजदूर वर्ग के लिए (मकान, न्यूनतम मजदूरी की दर, बंधुवा मजदूरी समाप्त), युवा वर्ग को विशेष प्रोत्साहन (प्रशिक्षण शिविर, व्यायामशाला), शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था (राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों पर जोर दे तथा अपनी विरासत के प्रति गौरव की भावना पैदा करे), आसान किस्तों में ऋण उपलब्ध कराने की

व्यवस्था, उत्पादित माल के लिए बिक्री केन्द्र, ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों पर जोर, मादक द्रव्यों के सेवन को रोकने का प्रयत्न, पढ़े-लिखे ग्रामीण युवकों को अपने ही क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित तथा इसके साथ ही साथ समाज में व्याप्त कुरीतियों (भ्रष्टाचार, बालविवाह, ग्रामीण क्षेत्रों में मुकदमेबाजी, आत्महत्या) जैसे जघन्य अपराधों का ग्रामीण क्षेत्रों में ही प्रशासन तथा गांवों के लोगों के सहयोग से निपटारा किया जाये। उपरोक्त कार्यक्रमों से जहां एक ओर शान्ति एवं सुरक्षा का वातावरण तैयार होगा वहीं दूसरी ओर राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास को एक नई दिशा मिल सकती है। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विचार गोष्ठियों में लिये गये निर्णय तथा इस सम्बन्ध में हो रहे अनुसन्धान कार्य को उनकी भाषा में समझाना होगा। यह भी आवश्यक होगा कि यदि विकास की गति में परिवर्तन नहीं होता तो इसके लिए क्षेत्रीय प्रशासन को जिम्मेदार माना जाये।

युवा शक्ति को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का आह्वान

विकास की संरचना में जनशक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है न कि धन, धन को विकास का परिणाम माना जा सकता है, पर आधार नहीं। विकास के लिए मुख्य तत्व जन, भूमि, सही नीतियां, श्रेष्ठ नेतृत्व प्रमुख हैं। इन सभी तत्वों को संतुलित एवं समन्वित ढंग से क्रियान्वित किया जाये तो लोगों के रहन-सहन के स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है जिससे धन के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पर अंकुश तो लगेगा ही प्रशासनिक एवं राजनैतिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा भी मिलेगा। आज सोवियत संघ, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, जापान के चहुंमुखी विकास का आधार वहां के युवाओं के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की जनता को पूर्ण सहयोग एवं काम के लिए प्रोत्साहित करना है। पलायन की विकराल समस्या के समाधान के लिए गांव वालों को हर नई तकनीक से अवगत करवा दिया जाये तो पलायन की प्रवृत्ति पर अवश्य रोक लगेगी। तंजानिया ने अपने गांवों के पुनर्निर्माण तथा पलायन को रोकने के लिए अपनी भौगोलिक तथा सामाजिक विरासत को संरक्षण के साथ समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप कार्य किये हैं तथा ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम को अविभाज्य अंग बना दिया। इस संबन्ध में यह एक सराहनीय कदम होगा यदि सरकार ग्रामीण विकास से सम्बन्धित किसी नीति का निर्धारण करती है तो इसके लिए क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों का अध्ययन किया जाये तभी उस क्षेत्र के विकास हेतु नीति का निर्माण किया जाये।

तल्लीताल, नैनीताल,
उत्तर प्रदेश।

पर्यावरण

महेन्द्र नाथ शुक्ल

प्रकृति ही, न केवल बनाती पर्यावरण को,
बल्कि हम भी बनाते हैं, अपने गुणों से,
अपनी चालों से, ढालों से, गानों से।

वन ही जीवन है, वन यदि जाये वे,
लगाये बहु वृक्षों को, संत व्रतधारी जो,
आचरण भी रखे, वे सदैव तरु वत्,
मानवहित, तप-त्याग, जीवन ऋषि-वत्।

जीवों की रक्षा तथा वनों की सुरक्षा हो,
तभी तो सुशिक्षा और सभी की भिक्षा हो,
नहीं उन्मूलन करें, स्थित प्रज्ञ वृक्षों का,
स्वयं का, समाज का, विश्व प्राणियों का।

अपने विचारों को, वृक्षों को सजायें हम,
सभी रिक्त भूमि पर, उनको उपजायें हम।
फल फूल, अन्न की समृद्धि अपनायें हम,
व्रत एक लें, केवल सत्य अरु अहिंसा हम।

वृक्षों की एकता, एक रूपता , दृढ़ता जो,
वही हम मानव समाज में, अपनायें।
वृक्ष अनेक, अनेक धर्म-पंथ जो,
उनकी विषमता, विरूपता हटायें।

अपर परगनाधिकारी, पीलीभीत,
जनपद पीलीभीत (उ. प्र.)

भारतीय महिलाएं—रोजगार के आइने में

त्रिलोकी नाथ

राष्ट्रीय विकास का अर्थ है राष्ट्र का चहुंमुखी विकास अर्थात् हर राज्य का, हर क्षेत्र का, हर जाति का एवं वर्ग का विकास। राष्ट्र की कुल जनसंख्या में लगभग आधा भाग स्त्रियों का है। यदि केवल पुरुष वर्ग ही उन्नति करेगा तो वह आधा-अधूरा विकास होगा। स्त्री को देश के विकास के लिए हर क्षेत्र में भाग लेना होगा। धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में तो स्त्री सहर्ष भाग लेती है परन्तु, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में अब तक उसकी हिचक समाप्त नहीं हुई है। वैसे भी इन सब में महत्वपूर्ण क्षेत्र आर्थिक है क्योंकि आर्थिक रूप से निर्भर होने पर ही स्त्री स्वयं को आत्मनिर्भर बना पाएगी। स्त्री को भी रोजगार के अवसर उसी तरह दिए जाएं जैसे पुरुषों को दिए जाते हैं। अपने श्रम से जीविका पाने पर स्त्री में आत्मविश्वास बढ़ता है। आर्थिक दृष्टि से महिलाओं का जागरूक होना देश की प्रगति में सहायक है।

राष्ट्र के विकास में स्त्रियों का योगदान तो है पर इस बात को कितना स्वीकार किया गया है या कितनी मान्यता दी गई है यह प्रश्न गहन रूप से विचारणीय है। स्त्री मजदूरों के महत्व को नकारा क्यों जाता है? आज स्त्रियों की भूमिका को नगण्य न मानकर उसके महत्व को स्वीकारने और मान्यता देने की आवश्यकता है। स्त्रियों को किस प्रकार का काम दिया जाता है तथा उनके लिए काम करने की परिस्थितियां कितनी अनुकूल या प्रतिकूल हैं यह चिन्तन का विषय है। इन सब पहलुओं पर गौर किया जाना तो आवश्यक है ही, साथ ही क्रमबद्ध और नियोजित ढंग से बाधाओं को समाप्त करना भी आवश्यक है।

वैसे तो आजकल सरकार की उदार नीति के कारण बड़े शहरों में सभी जगह स्त्रियां रोजगार में लगी प्रतीत होती हैं। सुबह किसी भी बड़े शहर के बस स्टैंड पर खड़े होकर देखिए तो लगभग पुरुष के बराबर ही महिलाएं भी खड़ी दिखाई देंगी। इन महिलाओं में कार्यालय में काम करने वाली महिलाएं तो होती ही हैं कुछ व्यवसायी महिलाएं भी आजकल तेजी से उभर रही हैं। अध्यापक, वकील, डाक्टर, इंजीनियर और पुलिस सभी क्षेत्रों में महिलाएं रोजगार पा रही हैं। इन सभी प्रकार के रोजगार प्राप्त करने के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है यह सुविधा हर महिला को उपलब्ध नहीं होती।

अशिक्षित या कम शिक्षा प्राप्त स्त्रियों को रोजगार प्राप्त करने के लिए कई तरह के पापड़ बेलने पड़ते हैं। ऐसी महिलाओं को फैक्टरी में छोटे-मोटे कार्य मिलते हैं या उन्हें मजदूरी करनी पड़ती है। मजदूर महिलाओं को इस रूप में काफी हानि उठानी पड़ती है। पुरुष-मजदूर के मुकाबले उन्हें वेतन कम मिलता है। कभी-कभी दोनों (पुरुष एवं महिला) एक-सा काम करते हैं परन्तु ठेकेदार फिर भी महिला मजदूर को कम वेतन देता है। उसका तर्क है कि स्त्री में शारीरिक क्षमता उतनी नहीं होती। इन सब बातों में कहीं न कहीं हमारी सामाजिक मान्यताएं भी आड़े आती हैं। स्त्री को बचपन से ही कुछ कामों के लिए अशक्त घोषित कर दिया जाता है। परवरिश का अंतर स्त्री व पुरुष को अलग क्षेत्रों में मुखर करता है। परिवार को सम्हालने का दायित्व आदिकाल से महिलाओं पर ही रहा और अब तक है। यही दायित्व उन्हें रोजगार की परिस्थितियों से समझौता करने पर मजबूर करता है। पुरुष घरबार की चिंता किए बिना केवल अपने कैरियर और धन कमाने का उद्देश्य अपने सम्मुख रखते हैं परन्तु स्त्री के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले वह अपना घरबार देखें और उससे तालमेल बिठाकर वह कोई काम कर सकती है तो कर ले अन्यथा घर पर रहे। इन्हीं कारणों से पुरुषों में श्रम की गतिशीलता अधिक होती है, स्त्री में कम। ऐसी दशा में वह घर के आस-पास ही छोटा-मोटा कार्य, कम मजदूरी पर, कर लेती है।

अब तक तो वेतनभोगी महिलाओं की चर्चा हुई। अब हम ऐसी महिलाओं का राष्ट्र के विकास में क्या योगदान है जो बिना वेतन लिए 12-15 घंटे कार्य करती हैं विषय पर विचार करेंगे। वे स्त्रियां जो कहीं पर नौकरी नहीं करती घर पर रहकर पति व बच्चों की देखभाल करती हैं तथा हर प्रकार से उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखती हैं। वे रोटी-पानी की व्यवस्था

करती हैं, घर की सफाई करती हैं, इन सब कामों के बदले उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता। इस प्रकार ऐसे कामों में किए गए श्रम को अनुत्पादक श्रेणी में रखा जाता है। इनके अतिरिक्त गांवों में भी महिलाएं घर की देखभाल के अतिरिक्त कृषि संबंधी कार्यों को करवाती हैं। इतना होते हुये भी उनका पति है, किसी भी महत्वपूर्ण फैसले में उनकी राय लेना ठीक नहीं समझते हैं। देश में अब तक गांवों का प्रतिशत अधिक है इसलिए कृषि संबंधी कामों में महिलाओं की कुल जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत भाग लगा हुआ है। इनमें से भी 28 प्रतिशत महिलाएं खेती करती हैं तथा 47 प्रतिशत खेतिहर मजदूरी करती हैं। इस प्रकार जितना महिलाओं का योगदान है उससे कम उन्हें मिलता है।

इसके अतिरिक्त लघु उद्योगों में भी महिलाओं की यही दशा है। पूरा परिवार यदि कोई उद्योग चला रहा है तो स्त्री घर के नियमित कामों से निबटने के बाद काम करती है। उनके काम करने से उद्योग का विकास भी होता है परन्तु महिलाओं को भी आर्थिक रूप से सहयोग देने वाली न मानकर उन्हें गृहिणी रूप में ही जाना जाता है। उनकी क्षमता का उपयोग उत्पादक कार्यों में होता है पर उसका लाभ उन्हें आर्थिक रूप से नहीं मिलता।

कृषि की नई उन्नत तकनीकों के कारण तथा लघु व कुटीर उद्योगों में नई मशीनें आ जाने के कारण महिलाओं का काम न के बराबर रह गया है। कम श्रम की आवश्यकता के कारण पुरुष ने ही सम्पूर्ण कार्य सम्हाल लिया है। परिवार से बंधी महिलाएं ज्यादा भागादौड़ी नहीं करना चाहती और वे अपने सभी अधिकार पुरुषों को सौंपे रहती हैं। आधुनिक युग में भी गांवों में महिलाओं की स्थिति के विषय में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। गांवों में उद्योगों का विस्तार होने के कारण पहले जो कम श्रम वाले काम यथा बीनना, छानना, कूटना तथा तेल पिराई जिसे वे बखूबी कर लेती थीं अब नई मशीनें आने से उन्हें घर में ही बैठना पड़ता है। अब ऐसी महिलाओं का विकास में क्या योगदान? कुछ और गौर किया जाए तो जो कार्य वे करती हैं उसकी जगह किसी और को रखा जाए तो एक माह में 300 रुपये से लेकर 800 रुपये तक देना पड़ेगा। वे स्वयं काम करती हैं तो निश्चय ही यह बचत ही है तथा इस प्रकार उनका योगदान तो निश्चित ही है।

वर्तमान सरकार सभी नागरिकों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए कटिबद्ध है। पर इसमें महिलाओं का क्या स्थान है या उनकी कितनी भूमिका होगी, इस पर कुछ भी स्पष्ट वक्तव्य जारी नहीं किया गया। कुछ आयोजकों ने इस मुद्दे को उठाया है कि महिलाओं के काम का कैसे निर्णय किया जाए और किए हुए काम को किस प्रकार आंका जाए। इस सब के लिए अब तक कोई नीति स्पष्ट प्रकाश में नहीं आई है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि देश में औद्योगिक विकास होने पर महिलाओं को रोजगार के अवसर अधिक प्राप्त होंगे क्योंकि पुरुष वर्ग और अच्छे काम की तलाश में शहरों की ओर आकृष्ट होगा और गांव में मजबूरन पुरुष योग्य कार्य भी स्त्रियों के द्वारा ही किए जाएंगे। शायद यह बात सत्य हो परन्तु अब तक ऐसे परिवर्तन के कोई संकेत नहीं मिले हैं।

सरकार ने गांव में कर्ज देने के कई कार्यक्रम 'गरीबी हटाओ' के अन्तर्गत चलाए पर महिलाओं में शिक्षा और प्रशिक्षण न होने के कारण वे इसके लाभ से वंचित रह जाती हैं। अवसर न मिलने के कारण उनकी कार्यकुशलता उत्तरोत्तर गिरती जाती है। स्वरोजगार योजनाओं का लाभ मुश्किल से 5 प्रतिशत महिलाएं ही उठा पाती हैं। कुछ कार्य ऐसे हैं जहां प्रशिक्षण नहीं चाहिए पर उनका महिला होना ही उनकी योग्यता पर प्रश्नचिह्न लगा देता है। कानूनन तो महिला व पुरुष लघु उद्योगों के लिए समान रूप से कर्ज के अधिकारी हैं परन्तु वास्तविक रूप से महिला को कर्जा देने में बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं की हिचक अभी तक समाप्त नहीं हुई है।

महिलाओं को आर्थिक सहायता देने पर परिवार का जीवन-स्तर ऊंचा होता है तथा भावी नागरिक अर्थात् बच्चों को पोषक आहार मिलता है क्योंकि स्त्रियां स्वभाव से ही घर को सुधारने की धारणा लेकर चलती हैं परन्तु पुरुष अपनी आय को घर के लिए खर्चना व्यर्थ समझता है। वह निवेश करने तथा उत्पादकता बढ़ाने में अपनी आय का अधिक भाग व्यय करता है। इस प्रकार स्त्री व पुरुष दोनों के लिए ही रोजगार के अवसर जुटाना तथा आर्थिक लाभ देना आवश्यक है तभी देश का विकास होगा और भविष्य सुरक्षित रहेगा।

लघु उद्योग यथा बीड़ी, अगरबत्ती बनाने के कामों आदि में जो महिलाएं कार्य करती हैं उनको न तो पूरा वेतन दिया जाता है और न ही भविष्य में उनकी नौकरी सुरक्षित रहेगी ऐसा आश्वासन मिलता है। वे रोज किए गए काम के आधार पर वेतन प्राप्त करती हैं। फैक्टरी के मालिक को यह भी पता नहीं होता कि वे किन परिस्थितियों में काम कर रही हैं क्योंकि वे घर पर ले जाकर कार्य करती हैं। कई बार तो वे परिवार सहित अधिक कमाने की धुन में दिन रात लगातार काम करती हैं। इन सब बातों का उनके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सरकार द्वारा स्वरोजगार योजना का लाभ बहुत कम महिलाएं उठा पाती हैं। फार्म आदि भरने व जमा कराने की विधि में कई औपचारिकताएं होती हैं जिसे वे झंझट समझ कर इसका लाभ

नहीं उठा पातीं। इसके अतिरिक्त कई महिलाओं को तो इस बात की जानकारी तक नहीं होती।

इसके अतिरिक्त पिछड़ी जाति वाली आदिवासी महिलाएं वन से लकड़ी आदि इकट्ठी करके कुछ जीविका प्राप्त कर लेती हैं परन्तु वनरक्षक कानून तथा कुछ पुरुषों की लोलुपता के कारण वहां से सूखी तथा भूमि पर पड़ी लकड़ी एकत्र कर बेचने का कार्य भी उनके हाथ में नहीं रहा। किसी भी अधिकारी या सुरक्षा गार्डों द्वारा पकड़ी जाने पर सामान से भी हाथ धोना पड़ता है।

शहरों के उद्योगों में स्त्रियों का नौकरी में मुश्किल से आधा प्रतिशत भाग ही है। कार्यालयों में 15 से 20 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त अध्यापन, चिकित्सा तथा सामाजिक कार्यों में 30 प्रतिशत हैं। इसका कारण शायद यह है कि ये कार्य महिलाओं के अनुकूल माने जाते हैं। नौकरियों में महिलाएं अधिकतर मध्यम पदों पर ही कार्यरत हैं।

निजी संस्थाओं में महिलाओं को स्थाई रूप से बहुत कम रखा जाता है। उन्हें कई साल तक डेली-वेजिज (दिहाड़ी) पर ही काम कराया जाता है। जब प्रसाधन-सामग्री आदि उद्योगों की शुरुआत की गई थी तब आशा की जा रही थी कि काफी महिलाओं को रोजगार मिलेगा पर ऐसा नहीं हुआ। योग्यता प्राप्त महिलाओं को भी अस्थाई रूप से ही रखा गया। किसी उद्योग के विकास या आधुनिकीकरण होने पर महिला कर्मियों की छटनी कर दी जाती है। वस्त्र तथा पटसन उद्योग में 1950 तक जितनी महिलाएं काम करती थी उनकी संख्या 1975 तक आते-आते तीसरे हिस्से से भी कम रह गई। महिलाओं की नई भर्ती भी नहीं की गई तथा रिटायर होने वाली महिलाओं के स्थान पर पुरुषों को ही काम दिया गया।

महिलाओं को काम देने में या नौकरी पर रखने में सबसे बड़ा विरोध का कारण उन्हें प्रसूति अवकाश देना है। इसके अतिरिक्त उनके बच्चों के लिए 'क्रेच' की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। इसलिए उद्योगपति उनसे कन्नी काटते हैं। परन्तु, अध्ययनों से पता चला है कि बहुत कम महिलाओं में निजी संस्थाओं में काम करते हुए प्रसूति अवकाश का लाभ पाया है। ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत केवल दो प्रतिशत ही है। इसके अतिरिक्त कृषि से संबंधित उद्योगों में भी महिलाओं को कम अवसर दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए कपास, चीनी तथा तेल मिलों में कर्मचारियों की कुल संख्या का दो या तीन प्रतिशत ही महिला-कर्मियों का है। व्यापार आदि क्षेत्रों में महिलाओं को 12 से 15 प्रतिशत तक रोजगार के अवसर मिलते हैं। इसके विपरीत अधिक मेहनत वाले तथा कम वेतन वाले उद्योगों यथा बीड़ी बनाने जैसे कामों में महिला-कर्मियों का प्रतिशत 70 तक है। अध्यापन, चिकित्सा तथा समाज कल्याण के क्षेत्रों में कुल का 22 प्रतिशत महिलाएं हैं। महिलाएं भी पढ़ाने का कार्य अधिक अच्छा मानती हैं। स्कूलों के स्तर तक तो महिलाओं की संख्या 25 प्रतिशत है परन्तु उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उनकी संख्या 10 प्रतिशत ही रह जाती है।

महिलाओं के उत्थान के लिए उन्हें शिक्षित तथा प्रशिक्षित करना आवश्यक है तभी वे अपना काम समझ सकेंगी तथा अपने कर्तव्य व अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाएंगी। इसके अतिरिक्त घर-गृहस्थी का बोझ भी उन पर पूरा न डाला जाए। घर के काम के लिए कुछ घरेलू मशीनों का सहायक होना आवश्यक है। बच्चों की देखभाल के लिए 'क्रेच' आदि जुटाना तथा परिवहन की उचित व्यवस्था करना जरूरी है। इन सब सुविधाओं के होने पर महिलाएं भी अपने कैरियर को बना पाएंगी तथा उनकी गतिशीलता बढ़ेगी और निश्चय ही उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। इस प्रकार वे देश के विकास में निश्चित योगदान दे सकेंगी तथा समाज में उनकी भूमिका और महत्वपूर्ण बन सकेगी।

डी-90, नारायण विहार
नई दिल्ली-110028

बेरोजगारी—एक ज्वलन्त समस्या : कारण और निदान

गोपाल लाल

मानव जन्म के साथ एक मुंह के लिए दो हाथ भी लेकर आता है, यदि इन हाथों को काम नहीं मिलता तो पापी पेट के सवाल के साथ-साथ जिन्दगी और मौत का सवाल भी उठ खड़ा होता है। बड़े खेद की बात है कि व्यक्ति काम के लिए लालायित है, लेकिन उसे काम नहीं मिलता और उसकी आत्मा रो उठती है। वास्तव में "बेरोजगारी तो एक अभिशाप है जो मानव को दीमक की भांति बाहर से कम और अन्दर से अधिक खोखला कर सीधा बचपन से बुढ़ापे का दर्शन कराती है।"

बेरोजगारी किसी राष्ट्र विशेष की समस्या नहीं बल्कि, विश्व-व्यापी समस्या बनती जा रही है। यह किसी न किसी रूप में (ग्रामीण या शहरी, अर्द्ध या पूर्ण तथा दृश्य या अदृश्य) हर राष्ट्र में देखने को मिलती है। कहीं अधिक है तो कहीं कम। विशेषकर भारत में यह अपना विकराल रूप धारण कर चुकी है, जो राष्ट्र के लिए विकास में सबसे बड़ी बाधा है।

भावी दुष्परिणाम

आज रोजी-रोटी की समस्या तथा उसका समाधान देश की सरकार के सामने भी एक बड़ी कठिन चुनौती है। बढ़ती आबादी ने इस समस्या को और अधिक जटिल तथा कठिन बनाने में आग में घी का काम किया है। दुनिया में सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक राष्ट्र होने का दम भरने वाले देश में आखिर कब तक इस समस्या की ओर अधिक अनदेखा रखा जायेगा? अब शायद झूठी डींग हांकने वालों की चलने वाली नहीं, क्योंकि जो हाथ ईश्वर ने इन्सान को रोजी-रोटी के लिए दिये हैं, उनका इस्तेमाल अवश्यंभावी है। अगर समय रहते इस समस्या पर गौर नहीं किया गया और अधिकाधिक लोगों को रोजगार नहीं दिया गया तो गरीबी और भुखमरी की समस्या विकटतर हो जायेगी। व्यक्ति के ज्यादा भूखे रहने से शरीर दुर्बल और कमजोर होने लगता है, अन्त में निराश हो जाता है।

यही नहीं इस समस्या के भावी दुष्परिणाम अत्यंत घातक सिद्ध हो सकते हैं जिनकी आज कल्पना नहीं की जा सकती जैसे—आर्थिक विषमता बढ़ सकती है और अन्तराल में सामाजिक कुरीतियां पनप सकती हैं।

अतः हमें आम आदमी की मूलभूत आवश्यकता (रोटी, कपड़ा और मकान) को पूरा करना होगा, जो बिना रोजगार के सम्भव नहीं।

कारण और निदान

बेरोजगारी मानव के लिए अभिशाप है तथा गरीबी का ही दूसरा नाम बेरोजगारी है। आजादी के बाद इस समस्या पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया जिसके फलस्वरूप गरीब अधिक गरीब और अमीर अधिक अमीर होते गये। अतः ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया। इसके अतिरिक्त भी बेरोजगारी में वृद्धि के अनेक कारण रहे हैं जिनमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित को महत्वपूर्ण कहा जा सकता है—

संसाधनों का मनमाना उपयोग

सामान्यतः पर्वतीय विकास, कृषि एवं ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए आवंटित राशि अन्य कार्यों में खर्च कर दी जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वान्छित लक्ष्यों की पूर्ति समय पर नहीं हो पाती तथा आर्थिक विषमताओं में कमी नहीं आती तो अनेक प्रकार की सामाजिक कुण्ठाएं जन्म लेती हैं, जिनसे जनता के मन में सरकार के प्रति अविश्वास पनपने लगता है। इस प्रकार संसाधनों के मनमाने उपयोग से सरकारी धन का अपव्यय होता है और बेरोजगारी ज्यों की त्यों बनी रहती है।

इसलिए सरकार के प्रति जनता के मन में विश्वास को बनाये रखने के लिए संसाधनों के मनमाने उपयोग की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियों पर पूर्णतः सरकारी अंकुश लगाया जाए। सभी क्षेत्रों के सन्तुलित विकास के लिए जनसहयोग और साधनों के सर्वोत्तम उपयोग की विधि अपनायी जानी चाहिए। वन एवं पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों के लिए रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था कर सरकारी धन के दुरुपयोग को रोका जाना अति आवश्यक है।

जवाहर रोजगार योजना

पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने 28 अप्रैल 1989 को इस योजना का श्रीगणेश किया था। नई सरकार इस योजना की नये

सिरे से वार्षिक समीक्षा करने जा रही है। जिसके परिणाम शीघ्र सामने आने वाले हैं।

यदि मोटे तौर पर योजना का विश्लेषण किया जाए तो कोई खामी नजर नहीं आती, सिर्फ आवश्यकता है योजना को ईमानदारी और प्रभावशाली ढंग से चलाने की। अतः योजना में निहित भावना के अनुरूप यदि इसका क्रियान्वयन किया जाये तो निःसन्देह यह योजना विशेषकर ग्रामीण बेरोजगारों के लिए एक वरदान है।

औद्योगीकरण गांवों का

आजादी के बाद शहरों की भांति गांवों के औद्योगीकरण पर उचित ध्यान नहीं गया है। गांवों के देश भारत में ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों के विकास पर पर्याप्त ध्यान नहीं देने के कारण आज गांधीजी का सपना साकार होते नजर नहीं आ रहा। साथ ही परम्परागत उद्योगों का पतन होने से रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों की ओर पलायन प्रारम्भ हुआ जिसने आज दौड़ का रूप धारण कर लिया है।

इसलिए गांवों के औद्योगीकरण के अभाव में प्रारम्भ हुई इस पलायन की दौड़ में हमें रुककर सोचना होगा और गांवों को उजड़ने से बचाना भी। यह आवश्यक है कि औद्योगीकरण चाहे गांवों का हो या कस्बों का या चाहे शहरों का, हमें विकास के सभी कार्य अधिक रोजगार देने की दृष्टि से आयोजित करने चाहिए। कृषि पर आधारित सहायक उद्योग-धंधों की स्थापना गांवों में ही की जानी चाहिए तथा श्रम प्रधान तकनीक अपनाकर लघु एवं कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित कर उनके विस्तार की भी आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र में पर्याप्त विकास

देश में बढ़ती बेरोजगारी का प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र में पर्याप्त विकास न होना भी है। देश की सात पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास पर पर्याप्त ध्यान देने के बावजूद ग्रामीण किसान एवं खेतिहर मजदूर की आर्थिक दशा में विशेष परिवर्तन नहीं आया है क्योंकि देश की कुल जोतों में 50 प्रतिशत जोतें सूखा, बाढ़ और खेती के दामों की लूट के कारण अलाभकर बनी हुई हैं। धीरे-धीरे मरुस्थल का आकार भी बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार वन सम्पदा के नष्ट होने से पर्यावरण में सन्तुलन बिगड़ गया है जिसके लिए किसान प्रशासन और कानून तीनों ही दोषी हैं।

इसलिए कृषि क्षेत्र में पर्याप्त विकास के लिए एक नया रास्ता तलाश करना होगा जो आम व्यक्ति को सम्पन्नता नहीं बल्कि पूर्ण रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य भी दे सके। वैसे खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से आज हम आत्मनिर्भर हो गये हैं क्योंकि कृषि देश की अर्थव्यवस्था के लिए रीढ़ ही नहीं बल्कि वह उसकी आत्मा भी है। अतः खेती की वैज्ञानिक विधियां अपनाकर कृषिजन्य उद्योगों की स्थापना कर तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास के हर पहलू को प्राथमिकता देकर ही अधिकाधिक बेरोजगारों को रोजगार सुलभ कराया जा सकता है।

प्रवक्ता आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़ (अलवर), राजस्थान

शहद

विक्रम राजन शर्मा

शहद मीठा है। इसमें वह सारे तत्व मौजूद हैं जो मनुष्य के शरीर को चाहिए जैसे कि लोहा, तांबा, मैगनीज, सिलिक, कैलशियम, पौटाशियम, सोडियम, फासफोरस आदि। शुद्ध शहद बहुत ही उपयोगी, आसानी से पचने वाला और पौष्टिक आहार है। यह योगियों का परम आहार है। शहद कई बार कड़वी एवं कसैली दवाइयों को मरीजों को खिलाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। हम कैसे जान सकते हैं कि शहद शुद्ध है यह जानने के लिए निम्नलिखित जांच कर सकते हैं।

(क) पानी की कुछ बूंदें शहद में डालें यदि यह पानी में वैसी ही रहती हैं तो शहद शुद्ध है और यदि यह पानी में घुल जाती है तो शहद अशुद्ध है।

(ख) कपास की एक बत्ती बनाओ और उसे शहद में डुबोकर जलाओ। अगर शहद शुद्ध होगा तो यह जलती रहेगी।

(ग) एक मक्खी को पकड़ कर शहद में छोड़ दो शुद्ध शहद उसके परों को नहीं चिपकेगा और वह मक्खी उड़ जाएगी।

(घ) शहद से कागज पर धब्बा नहीं पड़ता है।

गुणकारी उपयोग

प्याज का रस निकालो या प्याज का गूदा बनाकर उसमें शहद मिलाएं। इसको दिन में एक बार पीने से सांस की बीमारी में आराम पहुंचता है। शहद से फैफड़ों को ताकत, खांसी को आराम, गले का सूखने, तनाव का खत्म होने में फायदा होता है। आटे और शहद को मिलाकर मुहासों पर लगाने से मुहासे ठीक हो जाते हैं। दूसरे चर्म रोग भी प्रतिदिन 40 ग्राम शहद 300 ग्राम पानी में मिलाकर सुबह पीने से ठीक हो जाते हैं। शहद खून को भी साफ करता है। एक प्याज का रस और शहद का घोल यह शहद हिचकी रोकता है। गठिया से पीड़ित रोगी को ज्यादा मात्रा में शहद खाना चाहिए इससे उसे लाभ होगा। कब्ज होने पर 50 ग्राम शहद सुबह और रात को पानी या शुद्ध दूध के साथ लें। मधुमेह के रोगी जिन्हें मिठाइयां बहुत पसंद हैं शहद ले सकते हैं। मोतिया बिन्द जैसी बीमारी से आंखों को बड़ी तकलीफ होती है। इस बीमारी को ठीक करने में शहद बहुत काम आता है। एस. एम. होस्पिटल, जयपुर के आंख विशेषज्ञ ने कहा कि एक बूंद शुद्ध शहद की रोज आंखों में डालने से इस बीमारी से बचा जा सकता है। वे लोग जिनकी आंखों में मोतिया बिन्द उतरा हो वे भी 4 से 5 सप्ताह तक शुरू के दिनों में शहद का इस्तेमाल कर सकते हैं इससे उन्हें फायदा मिलेगा।

गले में सूजन होने पर एक चम्मच शहद दिन में तीन बार लें। शहद दिल के लिए सबसे अच्छा बलवर्धक है। यह बीमार दिल को बल देता है और ठीक दिल को और मजबूत करता है। शहद को गरम पानी में लेने से उदासीनता दूर होती है। एक नीबू का रस एक से दो चम्मच शहद गर्म पानी से मिलाकर प्रतिदिन सुबह लेने से मोटापे में कमी होती है। कुछ बच्चे बिस्तर गीला करने में उन्मत होते हैं। इस बीमारी से बच्चों को कुछ दिनों तक प्रतिदिन रात को शहद देने से छुटकारा पाया जा सकता है। एक चम्मच शहद को दिन में तीन बार पानी में लेने से पीलिया के रोगी को फायदा मिलता है।

शहद बच्चों, बूढ़ों और जवानों सभी के लिए बलवर्धक है। इसमें विटामिन 'ए' और 'बी' बहुत मात्रा में मिलता है, यह आसानी से पच जाता है। जो व्यक्ति नियमित रूप से शहद खाता है वह हमेशा स्वस्थ, चंचल और हृष्ट पुष्ट रहता है।

चेतावनी

शहद और घी बराबर मात्रा मे मिलाने से वह जहर बन जाता है।

हमेशा जांच लें कि आपने शुद्ध शहद विश्वसनीय जगह से खरीदा है। शहद थोड़ी मात्रा में लें।

एफ-91 नारोजी नगर,
नई दिल्ली-110029

1981 से 1991 तक अन्तर्राष्ट्रीय जल प्रदाय व सेनीटेशन वर्ष मनाया जा रहा है जिसमें हमारी सरकार का भी दर दराज के ग्रामों तक पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य है।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

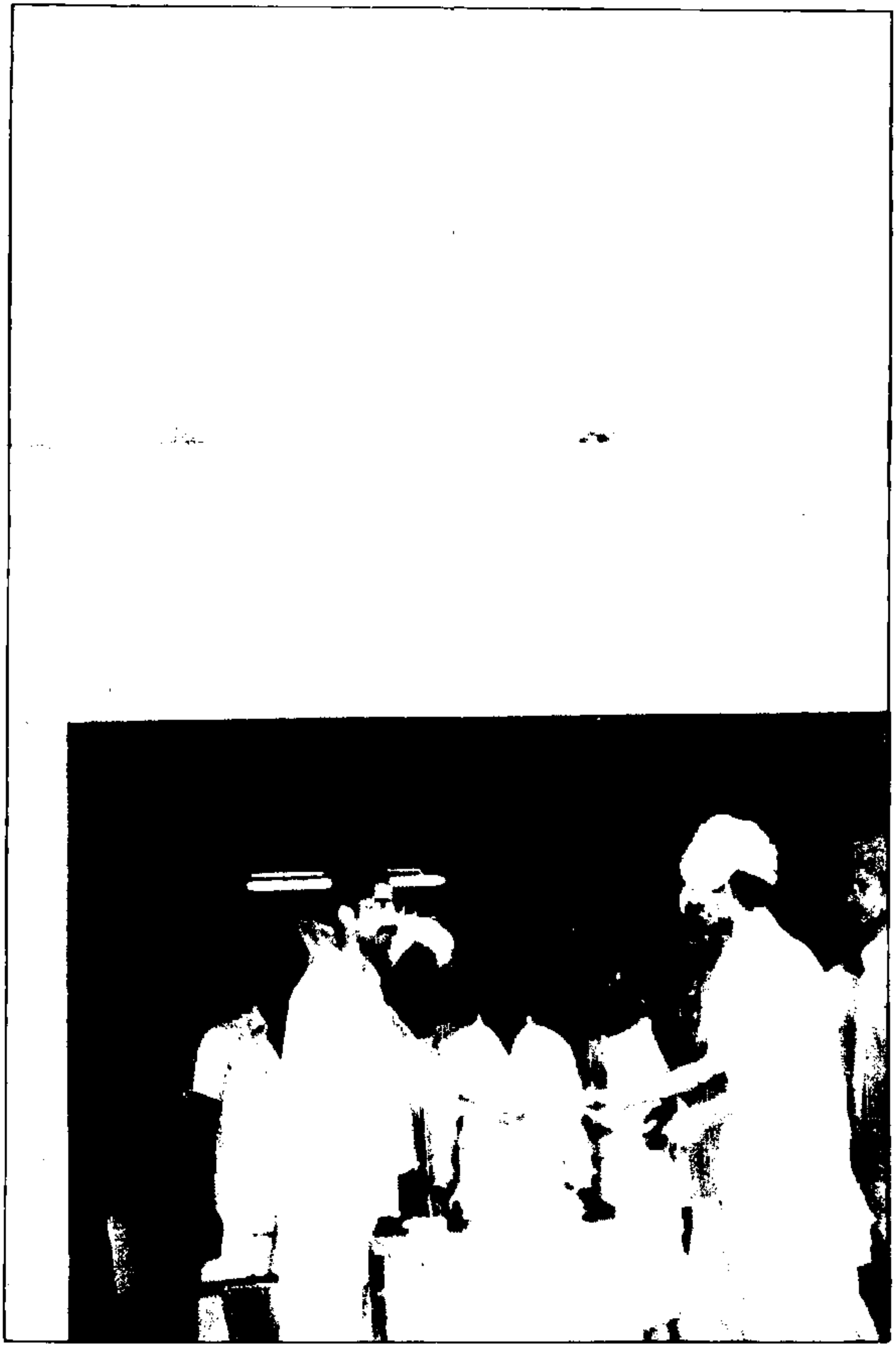

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और